भारत वासियों के नाम

मैत्री सन्देश

—अर्थात्—

निष्कलंक अवतार
हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब
क़ादियानी लिखित

"पैग़ामे सुलह"

का हिन्दी अनुवाद

अनुवादक :—
सैयद शहामत अली 'साहित्यरत्न' 'साहित्यालंकार'

प्रकाशक :—
अध्यक्ष प्रचार विभाग अहमदिया सम्प्रदाय
क़ादियान

पांचवीं बार] [सितम्बर 1981

निष्कलंक अवतार

हज़रत मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहिब

के

पवित्र-कथन

"यह सिद्धान्त अति प्रिय, शान्ति जनक, प्रेम और मैत्री की नींव डाल
वाला एवं सदाचार और चारित्रिक अवस्थाओं को सहायता देने
वाला है कि हम उन समस्त अवतारों को सत्यवादी स्वीकार
कर लें, जिनका इस जगत में प्रादुर्भाव हुआ। वे चाहे
आर्यव्रत में प्रकट हुए अथवा ईरान में; चीन
देश में उनका जन्म हुआ अथवा किसी
अन्य देश में, किन्तु उस सर्वान्तर्यामी
परमेश्वर ने करोड़ों हृदयों
में उन की प्रतिष्ठा
प्रतिष्ठापित
की एवं उनकी नींव
सुदृढ़ कर दी।.....
यह वह सिद्धान्त है जो क़ुर्आन ने
हमें सिखलाया है। इसी सिद्धान्त के
उपलक्ष्य हम समस्त धर्मों के निर्माताओं और
नेताओं को जिनका जीवन उक्त विशेषताओं के
अन्तर्गत आ जाता है आदर और सम्मान की दृष्टि से देखते हैं।"

—(तोहफ़ा कैसरिय्या

प्राक्कथन

वर्तमान युग के सुधारक और शान्ति के अधिनायक श्री मिर्ज़ा गुलाम अहमद साहब क़ादियानी अहमदिया सम्प्रदाय के निर्माता ने जो शिक्षा और सिद्धान्त संसार के सम्मुख उपस्थित किये हैं उन से केवल भारतवर्ष में निवास करने वाली जातियों और धर्मों में मैत्री और प्रेमभाव उत्पन्न होते हैं और देश की उन्नति और अभिवृद्धि के लिए सीधा मार्ग उत्पन्न हो जाता है अपितु पौर्वात्य तथा पाश्चात्य की विभिन्न विचार धाराओं और धर्मों एवं विज्ञान की विरोधी तरंगों के ररस्पर मिलाप का भी सूत्रपात होता है।

आपने अपने जीवन में लगभग 80 पुस्तकें रचीं एवं व्याख्यानों के द्वारा भी जनता में शान्तिजनक एवं उन्नति दायक विधानों को अभिव्यक्त किया। अहमदिया सम्प्रदाय की उन्नति के साथ साथ ज्यों ज्यों यह सिद्धान्त और नियम संसार के विभिन्न देशों और प्रदेशों में पहुंच रहे हैं जनता इसकी ओर आकर्षित हो कर स्वीकार करती चली जा रही है। यह निश्चय पूर्वक कहा जा सकता है कि वर्तमान काल में संसार का कल्याण और उद्धार इन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण करने से ही हो सकता है।

अहमदिया सम्प्रदाय के निर्माता का सब से बड़ा चमत्कार इस भौतिकवाद एवं नास्तिकता के युग में धर्म की चेतनता और परमात्मा की संजीवता को उपस्थित करना है। वह पारब्रह्म इस युग में अपने अस्तित्व का प्रमाण केवल बौद्धिक उक्तियों और तर्कों द्वारा ही नहीं देता है अपितु अपनी सजीव वाणी द्वारा अलौकिक चिन्हों और चमत्कारों से भी अपनी सत्ता दिखाता है। लाखों मानव इस पावन विभूति के अनुयायी हो कर आध्यात्मिक जीवन के स्रोत से अपनी पिपासा शान्त कर रहे हैं और उस सर्वशक्तिसम्पन्न परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करके

628

पापमय जीवन से मुक्ति पा कर पवित्र हो चुके हैं और यह सम्प्रदाय क्षिप्रगति से उन्नति कर रहा है और संसार के एक ओर से दूसरी ओर तक ख्याति प्राप्त कर चुका है।

अहमदिया सम्प्रदाय के निर्माता ने अपने स्वर्गवास से, जो 26 मई सन् 1908 ई० को हुआ केवल एक-दो दिन पूर्व अपना प्रसिद्ध व्याख्यान "पैग़ाम-सुलह" अर्थात् "मैत्री सन्देश" लिपिबद्ध किया जो 21 जून सन् 1908 ई० को रायबहादुर प्रतोल चन्द्र चैटरजी के सभापत्वि में आपके देहान्त के पश्चात् पढ़ कर सुनाया गया। इस सन्देश में यद्यपि भारतवर्ष में निवास करने वाले दो बड़े धर्मों हिन्दू और मुसलमानों को ही प्रायः सम्बोधित किया गया है परन्तु जो सिद्धान्त इस सन्देश में उपस्थित किये गए हैं वे देश की समस्त जातियों में संगठन एवं एकता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक और लाभदायक है। श्री ब्रह्मदत्त "फ्रण्टियरमेल" समाचार पत्र देहरादून 12 दिसम्बर सन् 1948 ई० में इस सन्देश का उल्लेख करते हुए लिखते हैं :—

"अहमदिया सम्प्रदाय मुसलमानों में एक उन्नति शील सम्प्रदाय है। समस्त धर्मों के साथ सद्व्यवहार करना इसके मौलिक सिद्धान्तों और शिक्षाओं की नींव में सम्मिलित है। समस्त धार्मिक नेताओं का आदर व प्रतिष्ठा करते हुए अहमदियों ने उनकी शिक्षाओं को अपने धार्मिक ग्रन्थों में सम्मिलित किया है।

चालीस वर्ष पूर्व अर्थात् उस समय जब कि अभी महात्मा गान्धी राजनीति के प्राची पर प्रगट नहीं हुए थे मिर्ज़ा ग़ुलाम अहमद साहब ने सन् 1891 ई० में ईसामसीह होने की घोषणा करके अपने परामर्श "मैत्री सन्देश" (पैग़ाम सुलह) पुस्तिकों में उपस्थित किये, जिनका अनुसरण करने से देश की विभिन्न जातियों में संगठन, एकता एवं प्रेम और सौहार्द

की भावना उत्पन्न होती है। आपकी यह प्रबल इच्छा थी कि जनता में सद्भाव सद्विचार एवं प्रेम और भ्रातृ-भाव उत्पन्न हो। निस्सन्देह आपका व्यक्तित्व प्रशंसनीय एवं आदरणीय है; क्योंकि आपकी दृष्टि ने भविष्य के प्रगाढ़ पटल में देखा और वास्तविक मार्ग की ओर पथ प्रदर्शन किया। यदि जनता अपने स्वार्थ और अनुचित नेतृत्व के कारण उस सीधे मार्ग को न देख सकी तो यह उसकी अपनी भूल थी; घृणा एवं वैमनस्य का जो उसने बीजारोपण किया था उसकी फसल काटने की वह अवश्यमेव अधिकारिणी है।"

इस समय जब कि हमारे देश की उन्नति और अभिवृद्धि के लिए नित्यप्रति योजनाएं बन रही हैं ऐसे समय में भारत वासियों की सेवा में यह "मैत्री सन्देश" अर्पण करता हुआ, मैं प्रार्थना करता हूं कि वे इस सन्देश का निष्पक्ष हो कर स्वाध्याय करें। मुझे पूर्ण आशा है कि यह सन्देश भारत की न केवल उन्नति का हेतु बनेगा अपितु शान्ति और अमन का भी अग्रदूत होगा।

भवदीय—
अध्यक्ष प्रचार विभाग
अहमदिय्या सम्प्रदाय
क़ादियान।

بسم الله الرحمن الرحيم نحمده ونصلي على رسوله الكريم وعلى عبده المسيح الموعود

मैत्री सन्देश

सर्व शक्तिमान् मेरे महा प्रभु ! मेरे प्रियतम ! मेरे दयामय पथ-प्रदर्शक ! हम को उस सन्मार्ग पर ले चल जिस सन्मार्ग पर चल कर आपके सत्यनिष्ठ और परमभक्त आपको प्राप्त करते हैं। हमको उन कुटिल मार्गों से सुरक्षित रख जिन पर सांसारिक विषय वासनाओं के पंकिल गर्त में धंसे दुष्कर्मी चलते हैं अथवा जिन कुमार्गों का अनुसरण सांसारिक मायाजाल में ग्रस्त लोभान्ध व्यक्ति करते हैं।

मित्रो ! हम सब चाहे हिन्दू हों या मुसलमान, (अथवा अन्य किसी भी जाति के लोग हों) हम लोगों की विचारधाराओं में भले ही सैकड़ों मतभेद हों, तथापि हम सब इस विचार में अवश्य एकमत हैं कि संसार का स्रष्टा एवं स्वामी एक ही परमेश्वर है। न केवल हम सब मानवता के नाते एक दूसरे से अभिन्न हैं अपितु हम सब भारतवासी होने के कारण एक दूसरे के पड़ोसी हैं इस प्रकार हमारा पारस्परिक सम्बन्ध अत्यन्त प्रगाढ़ है। ऐसी अवस्था में हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम सब स्वच्छ हृदय से परस्पर प्रेमी एवं मित्रों की भान्ति जीवन व्यतीत करें। एक दूसरे के साथ हार्दिक सहानुभूति रखें। दैहिक, दैविक और भौतिक अर्थात् शारीरिक, मानसिक और पार्थिव इत्यादि किसी भी क्लेश के अवसर पर संवेदन शील बनें किंबहुना सहानुभूति और संवेदना का वह आदर्श उपस्थित करें कि एक शरीर बन कर एक दूसरे के अवयव बन जाएं।

प्रिय देश वासियो ! वह धर्म वस्तुतः धर्म ही नहीं है जो निष्पक्ष सहानुभूति की शिक्षा नहीं देता और न ही वह मनुष्य मनुष्य कहलाने का

अधिकारी है जिसमें सहानुभूति की भावना नहीं। उस पारब्रह्म ने किसी भी जाति से भेद-भाव नहीं रखा अपितु समस्त भू-मण्डल पर उदारता का परिचय दिया है। उदाहरणतया परमात्मा ने अपनी ओर से जैसी योग्यता, क्षमता और कार्यशीलता की शक्तियाँ आर्यव्रत के प्राचीन निवासियों को प्रदान की थी वैसी ही समस्त शक्तियाँ योग्यता, क्षमता और कार्यशीलता इत्यादि उस ने अरब, फारस, सीरिया, चीन, जापान और योरुप तथा अमेरिका के निवासियों को भी प्रदान की है। समस्त जनता की सेवा के लिए परमात्मा की विस्तृत भूमि विशाल प्रांगण के रूप में उपस्थित है। इन सभी को सूर्य, चन्द्र और अगणित तारागण अपनी ज्योति प्रदान कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त और भी नाना प्रकार से यह नक्षत्र हमारा कल्याण कर रहे हैं।

विश्व की समस्त मानव जातियां वायु, जल, अग्नि और भूमि तथा अन्य विविध उन सब पदार्थों से—जिनको परमेश्वर ने उत्पन्न किया है—एक सा ही लाभ उठाती हैं। समस्त मानव वृन्द भूमिज पदार्थों को उपयोग में लाते हैं। सभी पुरुष पृथ्वी से उत्पन्न हुए अन्न, वनस्पति, औषधि और पुष्प एवं फलादि से लाभान्वित होते हैं। ईश्वर के यह वदान्यपूर्ण कार्य हमें इस बात की शिक्षा देते हैं कि हमें भी समस्त मानव जाति का कल्याण करना चाहिए, और हमें किसी भी प्रकार की क्षुद्र हृदयता अथवा अनुदार एवं संकीर्ण मनोवृत्ति को अपने भीतर कोई स्थान न देना चाहिए।

प्रिय मित्रो! इस बात को आप निश्चय रूप से हृदयंगम कर लें कि यदि इन दोनों जातियों (हिन्दू अथवा मुसलमान) में से कोई जाति परमात्मा के इस दिव्याचरण के उदाहरण की प्रतिष्ठा नहीं करती और उसे कार्यान्वित करने में असमर्थ रहती है, इस को उचित सम्मान से वञ्चित रखती है अथवा यदि कोई अपने जीवन को उक्त उदाहरण की वदान्यता और उदारता के अनुरूप बनाने में असफल रहती है

तो निश्चय रखिये वह जाति शीघ्र ही काल कवलित हो जायेगी और इस कुकृति एवं अनौचित्य के परिणाम न केवल उसको भोगने पड़ेंगे अपितु उसकी भावी सन्तान और वंश परम्परा को भी विनाश और महाकाल के मुख का ग्रास बनना पड़ेगा।

जब से इस विश्व की सत्ता है उस समय से समस्त देशों के सब ही धर्मनिष्ठ महानुभावों ने इस बात की घोषणा समयानुसार की है कि मानव का अस्तित्व परमात्मा के दिव्यगुणों को ग्रहण करते रहने पर ही आश्रित है। मनुष्य का शारीरिक (भौतिक) और आत्मिक (आध्यात्मिक) जीवन इस बात पर निर्भर है कि वह सर्वदा दिव्य आचरण और ईश्वरीय समस्त पवित्र विचारों को ग्रहण करने में तत्पर रहे। वस्तुतः इन से ही समस्त शान्ति और सुव्यवस्था उपस्थित की जा सकती है।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ

पवित्र ईश्वरीय वाणी कुर्आन शरीफ़ का प्रारम्भ ही इस वाक्य से हुआ है जो सूरा फ़ातिहा की प्रथम आयत है जिसके अर्थ यह हैं कि समस्त सद् स्तुतियें परमेश्वर के लिए हैं जो समस्त विश्व का स्वामी और पालनहार है। "ईश्वर समस्त विश्व का" कह कर कैसा उदार सिद्धान्त उपस्थित किया गया है! कुर्आन शरीफ़ के शब्दों के अनुसार विश्व के अभिप्राय के अन्तर्गत समस्त विविध जातियां, समस्त विविध युग और समस्त विविध देश सम्मिलित हैं। कुर्आन शरीफ़ की प्रारम्भिक आयत में इस प्रकार उदारता पूर्ण विचारों से अलंकृत एक अलौकिक सत्ता का प्रदर्शन वास्तव में उन जातियों का खण्डन है जो अपने सिद्धान्तानुसार परमात्मा की वदान्यता को केवल अपने तक ही सीमित रखते हैं। ऐसे लोग व्यवहारतः यह प्रकट करते हैं कि अन्य जातियों के लोगों की उत्पन्न ही नहीं किया अथवा यह कि उनको पैदा तो किया

परन्तु बाद में सर्वथा उनको विस्मरण कर दिया और उनको तिलाञ्जलि देकर रद्दी की टोकरी में फैंक दिया। उदाहरणतया यहूदी और ईसाई लोगों का आज भी यह विश्वास है कि समस्त नबी अथवा ऐसे महापुरुष जिनको सुधारक और पथ-प्रदर्शक या अवतार कहा जा सकता है संसार में केवल इसराईल के ही वंशज हैं और वे उन्हीं के वंश में आते रहे हैं। दूसरी जातियों की ओर परमात्मा का ध्यान ही नहीं गया। वह कुछ उनसे ऐसा विमुख रहा कि उनको अज्ञानान्धकार में पड़ा हुआ भी देखकर अथवा भ्रमपाश में फंसा हुआ देखकर उस (ईश्वर) की तटस्थता भंग नहीं होती और वह (ईश्वर) उन लोगों की दयनीय अवस्था पर भी द्रवित नहीं होता। इञ्जील (बाईबल) में हज़रत ईसा मसीह ने कहा है कि मैं केवल इसराईल की ही अस्तव्यस्त भेड़ों के लिए ही भेजा गया हूं। जैसा कि कहा जाता है कि "ईसा मसीह ईश्वर था" यदि यह यथार्थ है तो क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं है कि वह अपने सन्देश का क्षेत्र उतना ही संकीर्ण करता? क्या ईसा मसीह इसराईल के वंशजों का ईश्वर था? क्या वह अन्य जातियों का ईश्वर नहीं था? क्या उसे अन्य जातियों के सुधार की ओर से या उनको सन्मार्ग प्रदर्शित करने की ओर से ऐसा कृपण और निस्पृह होना चाहिये था? जो इस प्रकार कहे कि मुझे अन्य जातियों के सुधार और पथप्रदर्शन से कोई प्रयोजन नहीं।

संक्षेप में यही कहना पर्याप्त है कि यहूदी और ईसाई लोगों का यह विश्वास है कि ईश्वरीय सन्देश लाने वाले अथवा ईश्वर की ओर से भेजे हुए सभी सुधारक केवल (हिब्रू) जाति से उत्पन्न हुए और यह कि ईश्वरीय धर्मग्रन्थ भी उन्हीं के वंश में ईश्वर की ओर से आते रहे हैं। ईसाईयों का यह भी विश्वास है कि ईश्वरीय सन्देशों और प्रेरणाओं का क्रमिक विकास ईसामसीह पर समाप्त हो गया। इसके पश्चात् भूमण्डल पर अब किसी भी मनुष्य में यह योग्यता नहीं कि वह ईश्वरीय सन्देश को ग्रहण कर सके अथवा ईश्वर प्रेरित अनुभवों को प्रगट कर

सकें। अब ईश्वरीय सन्देश और ईशवाणी पर सील (Seal) लग चुकी है।

प्रायः इसी भाँति के सिद्धान्त तथा विचार दुर्भाग्यवश आर्यसमाज में भी पाए जाते हैं। यहूदियों और इसाइयों का जिस भाँति यह विचार है कि ईश्वरीय सन्देश को ग्रहण करने की क्षमता का विशेष व्यवहार केवल इसराईल के वंशजों के साथ किया गया। (उसी प्रकार आर्यसमाज का यह सिद्धान्त है) यह पक्षपात तो भारत वर्ष के ही निवासियों के साथ किया गया है। इनका सिद्धान्त है कि ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करने वाले चार ऋषि इस भारत भूमि में ही उत्पन्न हुए और जब कभी नया अवसर आएगा तब पुनः इसी भारत भूमि में ही ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने वाले ऋषि उत्पन्न होंगे। वे कहते हैं कि "केवल वेद ही ईश्वरीय ज्ञान है। यही युग युग के बाद पुनः आविर्भाव में आते हैं।" वे यह भी कहते हैं कि वैदिक संस्कृत ही एक वह भाषा है कि जिसे ईश्वर ने अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए विशिष्ट कर दिया है और उसी का प्रयोग करता है।

इस प्रकार एक ओर इसराईली अर्थात् यहूदी और ईसाई तथा दूसरी ओर आर्यसमाजी परमात्मा को समस्त संसार का स्वामी, रक्षक तथा पालनहार नहीं समझते। यदि वे ईश्वर को सम्पूर्ण विश्व और सम्पूर्ण काल का स्वामी, रक्षक और पोषक समझते होते तो ऐसी बातें क्यों कर कह सकते कि समस्त विश्व का स्वामी और रक्षक केवल इसराईल के वंशजों के लिए या आर्य्यों के लिए ही है। जिस अवस्था में परमात्मा समस्त विश्व का स्वामी और पालनहार है तो वह एक विशेष जाति से सदैव के लिए ऐसा सम्बन्ध जोड़ नहीं सकता जिस में स्पष्टतया पक्षपात और अन्याय की दुर्गन्ध पाई जाती है। इसी भांति भ्रमपूर्ण विचारों का ही खण्डन करने के लिए सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने कुर्आन शरीफ़ की प्रथम आयत में आदेश दिया है सब स्तुतियें

ईश्वर के लिए हैं जो समस्त भू-मण्डल का स्वामी और पालनहार है।" पवित्र ईश्वरीयवाणी कुर्आन में ईश्वर ने हमें कतिपय स्थानों पर इस विचारधारा के विरुद्ध सावधान रहने की चेतावनी दी है कि परमात्मा की पावन विभूतियां केवल किसी विशेष एक ही जाति या देश में उत्पन्न नहीं होती। महापुरुष और ऐसी पावन विभूतियां तो विश्व की समस्त जातियों और समस्त देशों में उत्पन्न होती हैं। ईश्वर ने किसी भी देश व जाति को अपनी पावन विभूति तथा दिव्यज्ञान से वंचित नहीं रखा। इस बात को ईश्वरीयवाणी कुर्आन शरीफ़ में अनेक उपयुक्त उदाहरणों और दृष्टान्तों से स्पष्ट किया गया है। सर्वशक्तिमान परमात्मा ने समस्त देशों और सब जातियों के लोगों को शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति के निमित जिस प्रकार विविध वस्तुएं प्रदान कीं और कर रहा है इसी प्रकार अध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी उस ने सब देशों और सब जातियों के लोगों के लिए विविध उपाय प्रदान किये और अब भी कर रहा है। उदाहरणार्थ पवित्रवाणी कुर्आन शरीफ़ ने एक स्थान पर आदेश दिया है कि :—

وَإِن مِّنْ أُمَّةٍ إِلَّا خَلَا فِيهَا نَذِيرٌ

अर्थात् संसार में कोई ऐसी जाति नहीं है जिस में कि कोई न कोई चेतावनी देने वाला न भेजा गया हो।

अतः यह बात निर्णीत है और इसके लिए किसी युक्ति की आवश्यकता नहीं कि वस्तुतः वह परमात्मा जिस पर हम सब को विश्वास रखना चाहिए यथार्थ में समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है। उस परमात्मा का स्वामी होना किसी विशेष देश, जाति अथवा युग तक के लिए सीमित नहीं है वह सब लोगों का सब जातियों का सब युगों का और समस्त देशों का स्वामी है, वह समस्त वदान्यताओं और वरदानों का पूर्ण और अनुपम स्रोत है। समस्त शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का पुञ्ज

और उद्गम स्थल है, वह अपनी सम्पूर्ण सृष्टि का पालन कर्ता है। उसी पर समस्त पदार्थ आश्रित हैं। उसकी दया और कृपा-दृष्टि का विस्तार सब लोगों, सब देशों और सब युगों पर फैला हुआ है। यह इस लिए है कि कोई भी जाति अथवा युग यह न अनुभव कर सके अथवा यह न कह सके कि परमात्मा ने अमुक जाति, अमुक देश अथवा अमुक काल में अपनी कृपा दृष्टि से उसे वंचित रखा। कोई यह न कह सके कि परमात्मा ने अमुक जाति या अमुक देश को अमुक काल में अपना ज्ञान दिया, ताकि वे भ्रम मार्ग से हटकर मोक्ष के अनुगामी बनें। अथवा अमुक काल में परमात्मा ने ईश्वरीय प्रेरणाओं, ईशवाणियों तथा चमत्कारों द्वारा अपने व्यक्तित्व को संसार के सामने प्रगट किया परन्तु खेद है कि हमारे समय में वह अन्तर्द्धान हो गया और उसके सब चमत्कार लुप्त हो गए।

ईश्वर ने अपनी वदान्यता को विश्व-व्यापी बनाया है और वह सब युगों के लिए है। उसका दया-भण्डार अनन्त है और उसने मनुष्य जाति पर बड़ी उदारता से कृपा दृष्टि की है। उसने किसी भी देश व जाति अथवा काल को अपने दातव्य एवं उदारता और दानशीलता से वंचित नहीं रखा। सभी उसकी दया के पात्र हैं. सब पर भौतिक व आध्यात्मिक समान रूप से कृपा दृष्टि करके परम उदारता का प्रमाण उपस्थित किया है।

अस्तु, जबकि हमारे ईश्वर की कृपा दृष्टि एवं वदान्यता और दानशीलता ऐसी विशाल है तो हमारा परमकर्त्तव्य है कि हम भी उसी का अनुसरण करें, हम भी विशाल हृदयी बनें। अतः मेरे देश बन्धुओ! यही विशाल हृदयता का भाव है जिसके लिए आपको आमन्त्रित करता हुआ मैं आपके सम्मुख "मैत्री सन्देश" (पैग़ाम सुलह) उपस्थित कर रहा हूं और ईश्वर से विनती करता हूं कि वह आपको स्वयं दिव्य ज्योति और ईश्वरीय प्रेरणा द्वारा

मेरी उस सहृदयता और सद्भाव को आपके हृदयों में यथार्थ रूप से प्रगट करे जिस सहृदयता और सद्भाव से मैं इसे उपस्थित कर रहा हूं। ईश्वर आपको सामर्थ्य प्रदान करे कि आप लोग इस सौहार्द और सद्भाव से अर्पित किये जाने वाले इस निमंत्रण का कोई विपरीत आशय न निकाल लें अथवा कहीं इसे मेरी किसी स्वार्थ सिद्धि का हेतु न समझ लें।

प्रिय मित्रो! लोकान्तर की बातें बहुत से पुरुषों के लिए गुप्त या प्रच्छन्न रहती हैं और ऐसी बातों को वे ही पुरुष समझ पाते हैं अथवा इन बातों का भेद उन्हीं पर खोला जाता है जो मृत्यु से खेलते हैं तथा जो अति सावधानी से उच्च कोटि के विषयों के मनन में एकाग्र रहते हैं, परन्तु इस संसार के पाप-पुण्य शुभ-अशुभ इत्यादि का ज्ञान तो प्रत्येक उस मेधावी पुरुष को हो सकता है जो उस पर यथोचित ध्यान देता है।

यह बात निर्विवाद है और हम पर स्पष्ट है कि एकता और संगठन द्वारा बहुत सी उन कठिनाइयों को सरलता से दूर किया जा सकता है। जिनका दूरीकरण संगठन के बिना असम्भव है। ऐसी अवस्था में दूरदर्शी और मेधावी पुरुषों में से कोई भी ऐसा व्यक्ति न होगा जो संगठन और एकता से प्राप्त होने वाले वरदानों और आशीर्वादों से अपने को वञ्चित करे।

हिन्दू और मुसलमान, भारतवर्ष के दो ऐसे धर्म हैं, जिनमें से किसी एक के भी विषय में यह समझ लेना कि वह किसी भी दूसरे को इस देश से निर्वासित कर देंगे, मुसलमान हिन्दुओं को अथवा हिन्दू मुसलमानों को, सर्वथा असम्भव और भ्रमपूर्ण है। इसके विपरीत वास्तविक बात यह है इन दोनों धर्मों—हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्ध अन्योन्याश्रित हैं। उनके प्रगाढ़ और दृढ़ सम्बन्धों की शृंखला को तोड़ना देश की एकता और शक्ति को विशृंखल करना है।

स्मरण रहे कि यदि इनमें से किसी पर भी कोई आकस्मिक दुःख या विपत्ति आए तो ऐसी परिस्थिति में दूसरा सुरक्षित न रह कर उस व्याधि के प्रकोप में अवश्य ही आ जायेगा। यदि इनमें से कोई एक किसी दूसरे को अवहेलना से लज्जित करना चाहे, तो परिणाम स्वरूप उसे भी उसी भान्ति लज्जित और तिरस्कृत होना पड़ेगा। यदि इनमें से कोई एक किसी दूसरे के साथ सहानुभूति का भाव नहीं रखता, तो उसे भी दूसरे की सहानुभूति से वंचित रहना होगा। यदि इन दो विभिन्न धर्मानुयाइयों में से किसी सम्प्रदाय का कोई व्यक्ति अपने से दूसरे सम्प्रदाय वाले व्यक्ति को किसी प्रकार की कोई हानि पहुंचाता है तो वस्तुतः वह आचरण उस मनुष्य के कार्य के सदृश है जो किसी वृक्ष की उसी शाखा को मूलतः काट रहा हो जिस पर स्वयं ही वह बैठा है (सन् 1947 की दुर्घटनायें और भारत विभाजन का कारण निस्सन्देह इन सिद्धान्तों की अवहेलना का परिणाम था। यदि भारतवासी-हिन्दू और मुसलमान इन उक्त सिद्धान्तों का अनुसरण करते तो यह दिन देखने में न आते। अब बुद्धिमत्ता इसी में है कि एक ठोकर से ही अपने को सावधान किया जाये तथा इन सिद्धान्तों का अनुगामी बन कर भारतीय आदर्श को संसार के सम्मुख उपस्थित किया जाये। अनुवादक)

मित्रो! आप लोग अब ईश्वर की कृपा से सुशिक्षित भी हो गए। अब घृणा, द्वेष, वैमनस्यादि और भेदभावों को त्याग कर परस्पर सौहार्द और प्रेमभाव जागृत करना शोभा देगा। इस अवसर पर उपेक्षा दृष्टि को छोड़ कर पारस्परिक सद्भावना, संदिच्छा और हितबुद्धि संवेदना, सहानुभूति आपकी बुद्धिमत्ता के प्रतीक होंगे निर्दयता के स्थान पर शालीनता तथा क्षुद्रता के स्थान पर उदारता और वदान्यता प्रगट करना आपको प्रतिभावान होना प्रमाणित करेगा।

इस जीवन-यात्रा की तुलना उस यात्रा से की जा सकती है

जो सूर्य की उष्णता से प्रदग्ध किसी मरुस्थल में की जा रही हो। अतः उस दुर्गमपथ के पथिक को, जो सूर्य की उष्णता से संतप्त, क्लान्त और प्यासा हो चुका हो, नव स्फूर्ति देने वाले शीतल जल की उपमा हमारी जीवन यात्रा में 'एकता' 'सद्भाव' से की जा सकती है। उस दुर्गम मार्ग के यात्री के लिए संगठन और एकता के उस शीतल जल की आवश्यकता है जो उस प्रज्वलित अग्नि को शान्त कर दे और प्यास के समय मृत्यु से बचाए। अतः जीवन यात्रा में आई हुई थकावट और प्यास को दूर करने वाला शीतल जल 'ऐक्य' ही है।

ऐसे समय पर मैं आप लोगों को मैत्री और शान्ति के लिए आमंत्रित करता हूं जबकि इस की अत्यन्त आवश्यकता है। संसार पर भांति भाँति की विपत्तियां आ रही हैं। हमें भू-कम्पों और दुर्भिक्षों का सामना करना पड़ रहा है और प्लेग ने भी अभी तक पीछा नहीं छोड़ा। परमेश्वर ने जो मुझे सूचनाएं दी हैं वे भी यही हैं कि यदि संसार अपने कुकर्मों और अनुचित रीति पद्धतियों को त्याग कर पश्चाताप नहीं करेगा तो संसार को भीषण आपत्तियों और भयंकर प्रकोपों का सामना करना पड़ेगा। अभी एक विपत्ति से मुक्ति न मिलेगी कि दूसरी आपत्ति सामने आ खड़ी होगी। इस प्रकार मानव जाति में एक चीत्कार और व्यग्रता उत्पन्न हो जायेगी कि ओह! यह क्या होने वाला है? कतिपय व्यक्ति तो क्लेशों और कष्टों व यातनाओं के भंवर में फंस कर किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जायेंगे। उनकी विवेकशक्ति भी क्षीण हो जाएगी। अतः मेरे प्रिय देश बन्धुओ! सावधान हो जाओ तथा ऐसे अवसर के आने से पूर्व ही अपनी सुव्यवस्था के किए यत्नशील हो जाओ। हिन्दू मुसलमानों को परस्पर सन्धि करके मैत्री भाव स्थापित कर लेना चाहिए। यदि इन दोनों में से कोई जाति भी किसी दूसरे के साथ ऐसा व्यवहार करती है जिस से इस मैत्री और शान्ति में बाधा पड़ती हो तो उसका कर्त्तव्य है कि अपने ऐसे अनुचित व्यवहार का

परित्याग कर दे अन्यथा इस दुर्व्यवहार के करने वाले के ऊपर ही उस समस्त वैमनस्य और द्वेष का उत्तरदायित्व होगा जो परिणाम स्वरूप इन दोनों के मध्य में उत्पन्न होगा।

यहां पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि इस परिस्थिति में जब कि धार्मिक मतभेदों का क्षेत्र प्रति दिन बढ़ता ही जा रहा है तो धार्मिक ऐक्य कैसे सम्भव हो? इसका उत्तर मैं यह दूंगा कि वस्तुतः तात्विक मतभेदों का मूल तो वही हो सकता है जिसकी आधार शिला युक्ति-युक्त और बुद्धि संगत हो, अप्रमाणित एवं अविवेकमय नहीं। मनुष्य को ईश्वर प्रदत्त तर्क-शक्ति का लाभ ही क्या हुआ, यदि उस ने अपनी उस शक्ति का उपयोग इस बात के लिए नहीं किया कि वह स्वयं जिस बात को सिद्धान्त रूप से स्वीकार कर रहा है अथवा जिस बात को कार्यरूप में चरितार्थ कर रहा है, वह सिद्धान्त या कार्य, तर्क संगत और अनुभवों एवं प्रमाणों से पुष्ट हो सकने वाला भी है, या नहीं? इस बात को समझ लेने के पश्चात् हमारा मार्ग साफ हो जाएगा और फिर छोटी छोटी साधारण बातों का मत भेद हमें एक दूसरे से पृथक नहीं कर सकेगा; तब तो मूल रूप से केवल वही सैद्धान्तिक बातें हमें एक दूसरे से पृथक करने वाली सम्भव हो सकेंगी, जिन से किसी धर्म के माननीय और आदरणीय महापुरुष और संस्थापक का तिरस्कृत होना व्यक्त होता हो अथवा किसी पवित्र ग्रन्थ की अवहेलना या निरादर का भाव व्यक्त होता हो। ऐसी बातें अवश्य अवाञ्छनीय हैं।

एकता के प्रेमी महानुभावों को यह जानकर परम हर्ष होगा कि उपर्युक्त विषयों के सम्बन्ध में इस्लाम की शिक्षा ऐसी नहीं है कि जिसे अवश्य ही और सर्वत्र वैदिक शिक्षा के विरुद्ध समझा जाये। वस्तुस्थिति तो यह है कि इस्लाम की शिक्षा के अन्तर्गत आने वाली प्रायः

सभी बातें वैदिक धर्म ग्रन्थों में कहीं न कहीं मिल जाती हैं। उदाहरण-तया ईश्वरीय ज्ञान और ईशवाणी के आविर्भाव के विषय को ही लीजिए। इस विषय में आधुनिक युग की नवजात आर्यसमाज का यद्यपि यह सिद्धान्त है कि ईशवाणी और ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने का द्वार वेदों के प्रादुर्भाव के उपरान्त बन्द हो चुका है किन्तु सभी हिन्दुओं का यह विचार और सिद्धान्त नहीं है। अवतार वादी हिन्दुओं के स्वयं 'अवतार' ही इस बात के सूचक हैं कि ईश्वरीय ज्ञान और ईशवाणी को प्राप्त करने का द्वार वेदों के आविर्भाव के पश्चात् भी खुला रहा है। इन अवतारों में से एक अवतार श्री कृष्ण जी महाराज भी हैं। जिन्हें इस देश वाले तथा विशेष रूप से बंगाली बहुत ही प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखते हैं। श्री कृष्ण जी महाराज ने स्वयं अपने आप को उस श्रेणी के महापुरुषों में रखा है, जिन्हें ईश्वरीय ज्ञान तथा ईशवाणी प्राप्त होती है। उनके अनुयायी और भक्त तो उन्हें स्वयं ईश्वर का ही अवतार समझ कर उनकी पूजा और भक्ति करते हैं परन्तु इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं कि श्री कृष्ण जी महाराज ऐसे महापुरुष अवश्य थे जिन को अपने समय का 'अवतार' (Prophet) कहा जाये। उन पर ईश्वर का विशेष अनुग्रह था यहाँ तक कि ईश्वर श्री कृष्ण महाराज से वार्तालाप भी करता था दिव्य सन्देशों तथा दिव्य ज्ञानों से प्रतिष्ठा बढ़ाता था।

अभी अधिक समय नहीं व्यतीत हुआ कि हिन्दुओं के मध्य में एक और बड़े सन्त गुरु बाबा नानक साहिब हुए हैं। गुरु साहिब की प्रतिष्ठा और इन के आदर का क्षेत्र बहुत विस्तृत है गुरु साहिब के अनुयायी सिक्ख कहलाते हैं और इनकी संख्या लगभग 20 लाख है। गुरु बाबा नानक साहिब ने स्पष्ट शब्दों में स्वयं अपने आपको ईश्वरीय ज्ञान को साक्षात् ईश्वर से प्राप्त करने वाला स्वीकार किया है। इसके प्रमाण गुरु ग्रन्थ साहिब और विभिन्न जन्म साखियों में दृष्टिगोचर होते

हैं। उन की जन्म साखियों में से एक जन्म साखी में उनका यह कथन मिलता है कि ईश्वरीय जान ज्योति से उन को यह विदित हुआ कि इस्लाम सत्य धर्म है। इसीलिए उन्होंने मक्का की तीर्थ यात्रा की (हज किया) और इस्लाम की शिक्षा दीक्षा को भी पूर्णरूप से अपनाया। यह भी सत्य है कि कतिपय चमत्कार और अलौकिक विभूतियों के लक्षण उन पर प्रगट हुए। इस में लेश मात्र भी सन्देह नहीं कि वे परमात्मा के उन महान और पवित्र भक्तों में से थे जिन को परमात्मा की विशेष अनुग्रह और अनुकम्पा का प्रसाद उपलब्ध होता है। हिन्दुओं में उन का प्रादुर्भाव केवल इस लिए हुआ कि वे इसलाम धर्म को ईश्वरीय धर्म प्रमाणित करें, इसकी साक्षी डेरा बाबा नानक में उनका पवित्र स्मार्क (Relics) इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि इस्लाम के कलमा—

لَآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ

अर्थात् सर्व-शक्तिमान परमात्मा के अतिरिक्त कोई (देवी देवता अथवा मूर्ति या मनुष्यादि) ईश्वरेतर वस्तु पूजनीय नहीं और मुहम्मद उस का रसूल (अवतार) है पर उनका पूर्ण विश्वास था जो उनकी क्रिया और वाणी दोनों से परिलक्षित होता था।

इसके अतिरिक्त गुरु हरसहाय, ज़िला फिरोज़पुर में बाबा साहिब के स्मार्क के रूप में जो वस्तुएं सुरक्षित हैं उन में एक प्रति कुर्आन करीम की भी है। अतः इस विषय में कौन सन्देह कर सकता है कि बाबा नानक साहिब ने जिन का हृदय पवित्र था, जिनकी प्रतिभा विशुद्ध थी और जिन्होंने सत्यता के साथ ईश्वरीय मार्ग का अनुसरण किया—ऐसे गूढ़ विषयों का भी ज्ञान ईश्वरीय स्रोत से पा लिया, जो विषय पण्डितों से प्रछन्न थे। ईश्वरीय ज्ञान को उपलब्ध करने के

अधिकरण (Recipient) के विषय में घोषणा की और अलौकिक चमत्कार और चिन्ह दिखा कर इस सिद्धान्त का समूल खण्डन कर दिया जिस सिद्धान्त से यह बात प्रतिपादित की जाती है कि वेदों के आविर्भाव के पश्चात् ईश्वरीय ज्ञान और ईशवाणी उपलब्ध करने का द्वार बन्द हो गया है और अलौकिक चमत्कारादि का प्रादुर्भाव भी बन्द हो चुके हैं।

निस्सन्देह बाबा नानक साहिब का व्यक्तित्व हिन्दुओं के लिए परमात्मा की ओर से एक वरदान था। अपितु कह सकते हैं कि वे हिन्दु धर्म के अन्तिम अवतार थे। उनका उद्देश्य और लक्ष्य ही यह था कि हिन्दुओं के हृदयो में उन दूषित विचारों और घृणा की वृत्तियों का उच्छेदन कर दिया जाये जो उनके हृदयों में इस्लाम के प्रति उत्पन्न हो गई थीं। परन्तु यह देश का दुर्भाग्य है कि हिन्दुओं ने बाबा नानक साहिब की शिक्षा और उपदेशों से कोई लाभ न उठाया। यही नहीं अपितु पण्डितों ने केवल इस कारण उन्हें बहुत सताया कि वे जहां कहीं भी जाते थे इस्लाम की स्तुति करते थे। बाबा साहिब तो हिन्दुओं और मुसलमानों में सद्भाव, शान्ति और मैत्री प्रतिष्ठापित करने आए थे। किन्तु खेद ! कि उनकी शिक्षा-दीक्षा और उपदेशों पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। यदि उनकी शिक्षा पर ध्यान दिया जाता तो हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच वैमनस्य हट जाता और आज यह दोनों सम्प्रदाय दो न हो कर एक ही होते। मुझे इस विचार से ही कितना अधिक क्लेश पहुंचता है कि एक महान् आत्मा का इस विश्व में आगमन हुआ और वह यहाँ से प्रस्थान भी कर गयी परन्तु शोक ! अज्ञानी पुरुषों ने उस से विमुख होना ही पसन्द किया। तथापि बाबा साहिब ने इतना तो प्रकट कर ही दिया कि ईश्वरीय ज्ञान की प्राप्ति का द्वार बन्द नहीं हुआ और न ही ईश्वरीय प्रेरणा का क्रम कभी अवरुद्ध हुआ। इसी तरह अलौकिक

चमत्कार भी परमात्मा के विशेष अनुग्रह पात्र विभूतियों के द्वारा समयानुसार प्रदर्शित किये जाते हैं। उन्होंने यह साक्षी दी कि इस्लाम के साथ शत्रुता करना वस्तुत: दिव्य ज्योति से (अर्थात् परमेश्वर से) शत्रुता करना है।

ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने के विषय में मेरे अपने अनुभव हैं और मेरे अनुभव इस बात के साक्षी हैं कि ईश्वरीय प्रेरणा और ज्ञान तथा ईशवाणी प्राप्त करने का द्वार इस युग में बन्द नहीं हुआ अपितु अब भी पूर्ववत खुला है ईश्वर अब भी उसी भांति बोलता है जैसे पहले बोला करता था। ठीक उसी तरह अब भी सुनता है जैसा कि पहले सुनता था। ईश्वर के पवित्र और शाश्वत गुणों और आचरण में से कोई भी गुण या विशेषता ऐसी नहीं जिस के सम्बन्ध में यह कहा जाये कि अमुक विशेषता अब उस में नहीं रही अथवा भविष्य में नहीं रहेगी। लगभग 31 वर्षों से मुझ को ईश्वरीय वार्तालाप का सौभाग्य प्राप्त है। उसने मेरे द्वारा सैकड़ों अलौकिक चमत्कार प्रकट करवाये तथा सहस्रों अद्भुत दैवी बातों का स्पष्टीकरण मेरे द्वारा करवाया है। ऐसे चमत्कारों और अलौकिक लीलाओं की साक्षी देने वाले सहस्रों मनुष्य हैं। वे चमत्कार समाचार पत्रों में भी और पुस्तक रूप में भी प्रकाशित हो चुके हैं। संसार में ऐसी कोई भी जाति शेष नहीं रही जो मेरे किसी चिन्ह अथवा अलौकिक चमत्कार की साक्षी न हो।

इस तरह बहुविधि साक्षियों के होते हुए भला वह कैसे सम्भव हो सकता है कि हम उस सिद्धान्त को स्वीकार कर लें जिसे आर्य समाज-जो बिना किसी प्रमाण के व्यर्थ ही में अपनी ओर से वेदों से सम्बन्धित बताता और मानता है अर्थात् ईश्वरीय ज्ञान को प्राप्त करने का द्वार वेदों के आविर्भाव तक ही खुला था और अब मानव जाति के लिये केवल कपोल कल्पित कहानियां और व्याख्यान

ही पर्याप्त हैं। इस सिद्धांत ने एक ओर बड़ी क्षति पहुंचाई हैं। इस सिद्धांत के कारण आर्य समाज अन्य धर्मानुयाइयों की धर्म पुस्तकों को मनुष्यकृत मानता है। यद्यपि वे पुस्तकें वेदों से अधिक अपने सत्य होने के प्रमाण उपस्थित करती हैं तथा उन धर्म ग्रन्थों की सहायता एवं सुरक्षा का उत्तरदायी स्वयं परमात्मा है। उनकी सत्यता का प्रमाण यदा कदा प्रकट होने वाले दैवी और अलौकिक चमत्कार व चिन्ह हैं और वे उनको सत्य होने की साक्षी भी देते हैं। फिर क्या कारण है कि वेद तो ईश्वर की वाणी हैं किन्तु वे धर्म पुस्तकें ईश्वर की पवित्र वाणी न हों? चूंकि परमात्मा अगोचर और प्रछन्न होने के कारण दुर्ज्ञेय है। अतः ऐसी परिस्थिति में परमात्मा के साक्षात्कार के लिये यही आवश्यक है कि स्वयं परमात्मा ही अपने आप को विविध देशों और विभिन्न युगों में चुने हुए विभिन्न महापुरुषों या नबियों (Prophets) के द्वारा प्रगट रूप में अपना साक्षात्कार कराये। यदि ऐसा न करे तो फिर तो मनुष्य जिस के चित्त में सहज ही में सन्देह उत्पन्न कराया जा सकता है वह तो नितान्त नास्तिक और अनीश्वरवादी हो जाये। इसके अतिरिक्त और कौन सा उपाय है। यह बात तो कल्पना में भी नहीं आ सकती कि वह परमात्मा जो समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी है, जो पूर्व से ले कर पश्चिम पर्यन्त समस्त भूमण्डल और सौर जगत को अपने सूर्य से प्रकाशित करता है, जो समस्त भू-मण्डल पर समयानुसार और आवश्यकतानुसार जलवृष्टि करता है, वही जगत पिता परमात्मा आध्यात्मिक विषयों में ऐसा सकुचित और संकीर्ण हृदयी हो जाये कि अपनी आध्यात्मिक शक्ति और ज्ञान ज्योति की कृपा वृष्टि एक ही जाति को एक ही देश पर और फिर एक ही भाषा में और एक ही विशेष युग में करे। इस सिद्धान्त का आधार कौन सा तर्क हैं या कौन सी युक्ति और कौन सा दर्शन शास्त्र है? मेरी समझ में तो इसका

कोई आधार दृष्टिगोचर नहीं होता। भला इस बात का कौन खण्डन कर सकता है कि वह परमात्मा जो कि विभिन्न भाषाओं के द्वारा की गई प्रार्थनाओं को समझ तो सकता है और सुनने में घृणा नहीं करता, इस बात से घृणा करे कि वह किसी भी अन्य भाषा के द्वारा ज्ञान ज्योति प्रदान करे। हां वह वैदिक भाषा संस्कृत में ही दूसरों पर ज्ञान प्रकाश की रश्मियां फैंक सकता है। वह वेद विद्या की वह रहस्यपूर्ण गुत्थी है, जिसे कोई भी व्यक्ति आज तक सुलझा नहीं सका।

मैं वेद को इस बात से निर्दोष समझता हूं कि उसने कभी अपने किसी पृष्ठ पर ऐसी शिक्षा दी हो कि जो न केवल युक्ति विरुद्ध ही हो अपितु पवित्र स्वरूप परमेश्वर पर संकीर्णता और पक्षपात का आरोप भी लगाती हो। वस्तुतः युक्ति संगत बात तो यह है कि जब किसी ईश्वरीय धर्म ग्रन्थ के आविर्भाव के पश्चात् एक दीर्घ काल व्यतीत हो जाता है तब उसके अनुयायी या तो अज्ञानता के कारण अथवा स्वार्थ-वश एवं प्रमादवश अथवा जान बूझ कर उस पुस्तक पर अपनी ओर से प्रक्षेपक मिला देते हैं और चूंकि भाष्यकार विभिन्न विचारों के होते हैं। अतएवं एक धर्म से सहस्रों मत उत्पन्न हो जाते हैं। यह एक अनोखी बात है कि ईश्वरीय ज्ञान और आकाश वाणी के आविर्भाव के सम्बन्ध में हिन्दुओं और यहूदियों की विचारधारा में प्रबल सादृश्य है। जिस प्रकार आर्य समाजियों का यह विश्वास है कि ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव का क्षेत्र आर्यव्रत की ही आर्य जातियों तक सीमित है और इस ज्ञान के आविर्भाव का माध्यम भी वैदिक संस्कृत भाषा ही है और वही परमात्मा की भी भाषा है। ठीक इसी प्रकार के विचार यहूदियों के अपने विषय में हैं। यहूदी समझते हैं कि उनकी ही जाति, उनका देश और उनकी ही भाषा का धर्म-ग्रन्थ ईश्वर भाषित ग्रन्थ है। इनकी विचारधारानुसार इबरानी (हिब्रू) ही ईश्वरीय भाषा है और इसराईल के वंशज ही ईश्वर की वाणी के पात्र हैं।

इनकी विचार धारा यह भी है कि यदि कोई नबी, अवतार (Prophet) होने की घोषणा करता है और यदि वह उन की जाति में से नहीं और न ही उन की भाषा बोलने वाला है तो उसको मिथ्या भाषी और झूठा समझा जाय।

हिन्दुओं और यहूदियों की विचारधारा में जो संकीर्ण हृदयता का भाव दिखलाया गया है ऐसी ही संकीर्ण हृदयता ज़रतश्त के अनुयाइयों (Zoroastrians) में भी दृष्टिगोचर होती है। अपने धर्म ग्रन्थ की प्राचीनता के विषय में इन का विचार आर्यों से बड़ा चढ़ा है। ज़रतश्त के अनुयायी अर्थात् पार्सी अपने धर्म को वेदों के आविर्भाव से भी कई अरब वर्ष पुराना बतलाते हैं। जाति, भाषा, देश आदि की विशेषता का संकुचित अहंभाव (Egoism) इनमें भी विद्यमान है।

उक्त समस्त बातों से तो यही प्रतीत होता है कि ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव को केवल अपनी ही भाषा, अपनी ही जाति और अपने ही देश तक सीमित रखने का स्पष्ट हेतू वैमनस्य और अल्प ज्ञान है। वास्तव में प्राचीन काल में किसी देश अथवा किसी जाति को यह भी विदित नहीं हो पाता था कि संसार में उन के अतिरिक्त और भी लोग हैं, और भी जातियां हैं तथा और भी देश हैं। ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि जब कभी किसी देश या जाति में कोई महापुरुष (अवतार) आया अथवा जब कभी कोई ग्रन्थ उन को पथ प्रदर्शन के लिए मिला तो बस उन्होंने समझ लिया कि ईश्वरीय ज्ञान को उपलब्ध करने की योग्यता और क्षमता उन्हीं में है। उन्होंने समझा कि ईश्वर ने हमारे पथ प्रदर्शन के लिये जो कुछ हमें देना था वह उसने दे दिया और वह सब उनकी उस धर्म पुस्तक में ही विद्यमान है और दूसरे देश व जातियां इस से वञ्चित हैं। यह विचारधारा और विश्वास ही उक्त संकीर्णता और कतिपय बुराइयों का कारण बना। अपने से भिन्न अन्य लोगों की धर्म पुस्तकों और उनके महा-

पुरुषों और अवतारों (Prophets) के प्रति इस उपेक्षा वृत्ति से ही शनैः शनैः बढ़ते बढ़ते उन धार्मिक मतभेदों और विरोधों तथा उन ईर्ष्या, वैमनस्य विद्वेषादि दुर्भावों का जन्म हुआ जिनको आज इस धर्म और जाति से सम्बन्धित क्षेत्रों में देखते या पाते हैं। बहुत समय तक कोई एक राष्ट्र से सर्वथा अपरिचित रहा और कोई देश किसी दूसरे देश से नितान्त अनभिज्ञ रहा और ऐसा अनभिज्ञ रहा कि भारत के विद्वानों का यह मत था कि हिमालय पर्वत ही इस पृथ्वी की चरम सीमा है और इसकी दूसरी ओर कोई नहीं रहता और न ही वहां पर मनुष्यों का निवास स्थान है।

जब परमात्मा ने अज्ञानता का सामने से पर्दा उठा दिया और ज्ञान क्षेत्र की वृद्धि तथा सभ्यता का प्रसार होने लगा। साथ ही संसार में मानव समाज में एक दूसरे से परिचय भी होने लगा तब एक देश से दूसरा देश परिचित हुआ। इस प्रकार सभ्यता में तो परिवर्तन आता गया परन्तु विचार में परिवर्तन न हुआ। उन लोगों का अन्धविश्वास—जिनका सम्बन्ध ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव अथवा महापुरुषों के अवतार आदि से था—अपनी संस्कृति के अनुसार वैसा का वैसा ही रहा।

अतः प्रत्येक जाति यही समझती थी कि ईश्वरीय ज्ञान व अवतारों के आविर्भाव तथा धर्म-ग्रन्थों इत्यादि और ईश्वरीय वदान्यता का एकमात्र केन्द्र उन्हीं का देश रहा है और ईश्वर ने उनके ही देश को इन समस्त बातों के लिए विशिष्ट कर दिया है। उन दिनों प्राचीन काल में अधिकांश जातियों में अन्धविश्वास चरमसीमा तक पहुंचा हुआ था। उस अन्ध विश्वास में विचार स्वातन्त्र्य को कोई स्थान नहीं दिया जाता था अपितु परम्परानुगत प्रचलित रूढ़ियों और रीति रिवाजों का तनिक सा विरोध करने वालों को तलवार के घाट उतार दिया जाता था।

ऐसी अवस्था में किसी को साहस ही न होता था कि परस्पर लड़ने झगड़ने वाले अन्य धर्मानुयाइयों में एकता और शान्ति स्थापित कराये। इन अनुचित और कुत्सित मनोवृत्तियों ने विचार स्वतन्त्रय का गला घोंट दिया और अन्धविश्वासी अहंभाव के उन आवेगों को शान्त करके उनमें सन्धि कराने का साहस किसी में भी न हुआ।

गौतम बुद्ध ने इस एकता और शान्ति के लिए प्रयास किया। उन्होंने इस बात को स्वीकार नहीं किया कि केवल वेद ही सबसे प्रथम और सबसे अन्तिम ईश्वरीय ज्ञान हैं। उन्होंने इस सिद्धान्त को नहीं स्वीकार किया कि ईश्वरीय ज्ञान के आविर्भाव का क्षेत्र किसी एक विशेष देश जाति अथवा भाषा तक ही सीमित है इस बात की घोषणा के द्वारा गौतम बुद्ध ने ब्राह्मणों की उस बात को महान आघात पहुंचाया जिस बात के अनुसार परमेश्वर पर उन्होंने अपना और अपने देश का एकाधिपत्य जमा रखा था। तात्कालिक विचार धारा के साथ असहमति प्रगट करने के कारण गौतम बद्ध को घोर यन्त्रणाएं भी सहनी पड़ी। उनको नास्तिक और अनीश्वर वादी कहा गया। गौतम बुद्ध को उसी भान्ति नास्तिक ठहराया हुआ समझना चाहिए जैसा कि योरुप और अमेरिका के पादरियों की दृष्टि में वे सुक्ष्मदर्शी और तत्वान्वेषक जो ईसामसीह को ईश्वर नहीं मानते, नास्तिक हैं। उनकी बुद्धि और हृदय दोनों ही इस बात को स्वीकार नहीं करते कि परमेश्वर को भी सूली पर चढ़ाया जा सकता है। गौतम बुद्ध को भी इसी प्रकार नास्तिक ठहराया गया। विरोधियों और उपद्रवियों का साधारणतया जैसा स्वभाव हुआ करता है, गौतम बुद्ध पर उन्हों ने साधारण जनता में उस के प्रति घृणा उत्पन्न करने वाले आरोप और नाना प्रकार के दोष लगाये और गौतम के विषय में सीमातीत वितण्डावाद खड़ा कर दिया फलतः गौतम बुद्ध को अपनी प्रिय जन्मभूमि आर्यव्रत से बलात् निर्वासित किया गया।

हिन्दू लोग आज भी उसकी सफलता को बड़ी घृणा से देखते हैं परन्तु विदेशों में उसको न केवल आशातीत सफलता ही मिली अपितु उसकी महान् प्रतिष्ठा भी हुई। हज़रत ईसा मसीह का कथन है (A prophet is seldom honoured in his own land) कि प्रत्येक अवतार अपने देश में अपमानित किया जाता है परन्तु विदेश में उसकी महती प्रतिष्ठा होती है। हमारे यहाँ भी प्रसिद्ध है कि "गाँव का जोगी जोगिया आन गांव का सिद्ध" गौतम बुद्ध को अपने उद्देश्य में उस समय अद्भुत सफलता मिली जब वह अपने देश से बाहर गया और आज संसार का लगभग एक तिहाई भाग बौद्ध धर्म का अनुयायी है। इसके मुख्य और प्रधान कार्यक्षेत्र चीन तथा जापान हैं। इस धर्म का प्रसार रूस तथा अमेरिका तक है।

अस्तु, अब हम पुनः अपने वास्तविक विषय की ओर आते हैं। प्राचीन काल में जब किसी एक धर्म के अनुयायी किसी अन्य देश में फैले हुए धर्म से अनभिज्ञ थे, तब प्रत्येक जाति अपने ही धर्म ग्रन्थों में प्रतिपादित बातों को एक मात्र सत्य मान बैठी और फिर जब यातायात के द्वारा किसी एक देश के निवासियों का परिचय किसी दूसरे देश के निवासियों के साथ हुआ और उन्होंने एक दूसरे के सिद्धान्तों को जाना तब उनको इस बात में बड़ी कठिनता हुई कि एक दूसरे के सिद्धान्तों को स्वीकार कर सकें। कल्पना ने प्रत्येक धर्म के विषय में कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण विशेषता और सुन्दरताएं बना रखी थीं, और यह कोई सरल कार्य न था कि उन कल्पना प्रसूत बातों का सहसा परित्याग किया जा सके। इसका परिणाम यह हुआ कि विभिन्न धर्मों के अनुयाईयों ने एक दूसरे के सिद्धान्तों का खण्डन प्रारम्भ कर दिया। उदाहरणार्थ पारसियों (ज़रतश्त के अनुयाइयों Zoroastrians) ने घोषित कर दिया कि संसार का कोई धर्म ज़रतश्तों के सदृश नहीं। महापुरुषों के अवतार भी इन्हीं के वंश तक सीमित हैं एवं इनके धर्म

ग्रन्थ ही प्राचीनतम हैं। अपने धर्म की इन्होंने इतनी प्राचीनता बताई कि वेद का इतिहास बतलाने वालों के सम्मुख वेदों की प्राचीनता भी हीन प्रतीत होने लगी। यहूदी लोग भी इस प्रकार की कपोल-कल्पित गाथाओं और असंगत अतिशयोक्तियों को दूसरों के सम्मुख उपस्थित करने में किसी से पीछे न रहे। उन्होंने युग युगान्तरों के लिए परमेश्वर का सिंहासन अपना देश फ़लस्तीन ही नियुक्त कर दिया जो किसी भी स्थिति में वहां से हटाया नहीं जा सकता एवं उनकी जाति के व्यक्तियों को ही देशोद्धार और उनके सुधार के हेतु अवतार रूप में आने के लिए विशेषतया निश्चित कर दिया गया। अवतार का क्षेत्र एक मात्र उन्हीं की जाति के व्यक्तियों के लिए निश्चित है। इन्होंने दूसरों के लिए धर्म प्रचार को भी रोका और यह माना कि ईश्वरीय ज्ञान एक विशेष वरदान है और यह वरदान उन्हीं की जाति के पुरुषों के भाग्य में है। यदि किसी अन्य जाति में कोई ऐसा महापुरुष आवे जो अपने आप को अवतार (Prophet) समझता हो तो इनके निकट वह झूठा और मिथ्याभाषी होगा।

इसी प्रकार के दूसरे विचार आर्यावृत के निवासियों में भी सुदृढ़ हो गए। इनके विचार के अनुसार तो परमेश्वर इनके देश का राजा है। जिसे संसार के अन्य देशों का कुछ भी ज्ञान नहीं? युक्ति और तर्क के बिना ही यह विश्वास लोगों के हृदयों में जम गया कि परमेश्वर को तो आर्यावृत के ही वातावरण से अनुराग है। उसे कभी इस बात का विचार ही नहीं होता कि इन लोगों की दशा को भी देखे भाले जिनको उसी समय से बिल्कुल असहायावस्था में छोड़ दिया गया है, जब से उसने इनको उत्पन्न किया।

प्रिय मित्रो! विचारने का स्थान है कि क्या ये सिद्धान्त और नियम ऐसे हैं जिनको मानव स्वभाव स्वीकार कर सकता है? क्या इस भांति

के विचार तर्क संगत हैं ? मनुष्य की चेतना-शक्ति में क्या कोई ऐसी बात है जो इस का विचार कर सके ? मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता कि बुद्धि और विवेक को रखने वाला कोई भी व्यक्ति एक ओर तो यह कहे कि परमात्मा समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी और अधिपति है और दूसरी ओर यह भी कहे कि उसने अपनी शाश्वत विशेषताओं को संसार के बड़े भाग से हटा रखा है और यह केवल किसी एक जाति या एक देश का रक्षक और पालनहार है। परमात्मा ने जो शारीरिक और प्राकृतिक सुविधाएं दे रखी हैं क्या उन में भी इस प्रकार के पक्षपात की कोई उपमा मिलती है, यदि नहीं तो क्योंकर ? यह सम्भव है कि आध्यात्मिक सुविधाओं को देने में वह ऐसे पक्षपात से काम लेवे।

यदि हम तनिक भी ध्यान दें तो समझ में आ जायेगा कि ऐसे संकुचित विचारों ने हमें किस बुरे परिणाम पर पहुंचाया है। यह बात स्पष्ट है जिस को वर्णन करने की मैं आवश्यकता नहीं समझता कि जिन महापुरुषों के या अवतारों (Prophets) के अनुयायी और भक्त प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक श्रेणी के लाखों मनुष्य हैं, इन महापुरुषों की निन्दा और अप्रतिष्ठा के परिणाम कितने भयानक और वीभत्स हैं। कोई भी सम्प्रदाय सम्भवतः ऐसा न होगा, जिसे इन महापुरुषों की निन्दा के परिणामों का न्यूनाधिक अनुभव न हुआ हो।

मित्रो ! चिरकाल के अनुभवों और परीक्षणों ने यह बात सिद्ध कर दी है कि महापुरुषों (Prophets) की निन्दा करना, इनके विषय में अनुचित और अपमानजनक बातें कहना अथवा किसी अन्य प्रकार से इनका अनादर करना एक ऐसा विष है जो शरीर 'आत्मा' और मन इत्यादि को दूषित कर देता है। इस अनुचित कार्य की सत्ता दिन दूनी रात चौगनी हानि पहुंचाती है। उस देश में कभी भी शान्ति नहीं रह सकती है जिस देश में बसने वाले विभिन्न सम्प्रदाय के लोग एक दूसरे के धार्मिक नेताओं और महापुरुषों पर कटाक्ष और आक्षेप

करते रहें। किन्हीं ऐसे दो सम्प्रदायों में सद्भाव नहीं रह सकता, जिन में कोई भी एक या दोनों ही एक दूसरे के धार्मिक नेताओं या अवतारों पर कटाक्ष करते हैं। प्रत्येक पुरुष का हृदय ऐसे अवसर पर अवश्य क्षुब्ध और उत्तेजित हो जाता है, जब वह अपने धर्म प्रवर्त्तक की निन्दा, और अनादर को देखता या सुनता है। विशेष कर मुसलमान तो ऐसे हैं कि वे यद्यपि अपने पैगम्बर को ईश्वर या ईश्वर का साक्षात् पुत्र नहीं मानते, तथापि इनका यह दृढ़ विश्वास है कि इन का धर्म प्रवर्त्तक उन सब धार्मिक महा-पुरुषों में बड़ा है जो किसी भी नारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ है। अतएवं मुसलमानों के साथ शान्ति और सद्भाव रखने के लिये यह आवश्यक है कि उनके धर्म प्रवर्त्तक की समुचित और उपयुक्त प्रतिष्ठा की जाये।

मुसलमानों के दृष्टिकोण के अनुसार तो किसी भी सम्प्रदाय के महापुरुषों की अथवा अवतारों की निन्दा करना महा पाप है। अतः हम लोग दूसरे धर्मों के ऋषियों और अवतारों के विषय में कदापि अपशब्द नहीं कहते, अपितु समस्त धर्म प्रवर्त्तकों का समुचित आदर व सत्कार करते हैं। हमारा यही विश्वास है कि सभी धर्म प्रवर्त्तक चाहे वे किसी भी देश में किसी भी युग में इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हों, महापुरुष हैं। वे महापुरुष जिन्हों ने अपनी शिक्षा के द्वारा लाखों करोड़ों मनुष्यों के हृदयों को अपनी ओर आकृष्ट किया और जिन्होंने संसार के विपुल भाग में अपनी ख्याति एवं कीर्ति और यश को पहुंचा कर मानव समाज से प्रतिष्ठा और आदर प्राप्त किया, ऐसे सभी यशस्वी, तेजस्वी महा पुरुष अवतार हैं तथा नबी पैगम्बर और ईश्वरीय सन्देश के पहुंचाने वाले हैं। उक्त वस्तु स्थिति उनकी सत्यता की साक्षी देने वाली है। यदि ऐसे महा-पुरुषों का आगमन ईश्वरादेश से न हुआ होता तो वे क्योंकर

लाखों मनुष्यों के हृदयों पर विजय प्राप्त कर सकते थे और क्योंकर उनके लाखों अनुयायी हो जाते। ईश्वर उन पुरुषों को तो ऐसे महान आदर का अवसर ही नहीं देता, जिनका वरन स्वयं परमात्मा ने न किया हो और यदि कोई छलप्रपञ्च द्वारा बनने की चेष्टा करे और अवतारों वाली महान प्रतिष्ठा प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो शीघ्र ही ईश्वर द्वारा पछाड़ा जाता है और घृणित मृत्यु का ग्रास बनाया जाता है और इसी संसार में ही वह अपने किए (प्रपञ्च) का दण्ड भुगत लेता है। सत्यवादी को ईश्वर की ओर से प्रतिष्ठा दी जाती है और उसका यशोगान भूमण्डल पर छा जाता है परन्तु झूठे और प्रपञ्ची का तो परमात्मा अस्तित्व ही मिटा देता है। इस शाश्वत नियम और सिद्धान्तानुसार हम वेदों को भी अपौरुषेय ईश्वर प्रदत्त स्वीकार करते हैं और इसी सिद्धान्त के अनुयायी एकेश्वर वादी वैदिक ऋषि भी पावन विभूति और श्रद्धेय महापुरुष थे। परन्तु यह एक सत्य है कि वेदों की शिक्षा के अनुयायी एकेश्वर वाद की पूजा के विषय में निर्दिष्ट और यथार्थ मार्ग से पथ भ्रष्ट हो गए। कारण, उस शिक्षा में एकेश्वरवाद और एकेश्वर पूजन को स्थिर रखने की शक्ति ही न थी। मूर्ति-पूजक, अग्नि पूजक सूर्योपासक, गङ्ग-पूजक अथवा सहस्रों (33 करोड़) देवी देवताओं के पुजारी अथवा जैन मत या शाक्त मतावलम्बी और दूसरे अन्य जितने भी सम्प्रदाय हिन्दू धर्म के अन्तर्गत समझे जाते हैं सभी अपने सिद्धान्त का आधार किसी न किसी तरह वेदों पर ही रखते हैं। इसका यही तात्पर्य हुआ कि वेदों की व्याख्या और मीमांसा इन सब विभिन्न विचारों की पुष्टि कर सकती है। इस विषम परिस्थिति में भी कुर्आन मजीद की शिक्षा के अनुसार हम तो वेदों को अपौरुषेय ही मानते हैं, क्योंकि पौरुषेय-ग्रन्थ की ऐसी शक्ति नहीं हो सकती कि वह करोड़ों मनुष्यों को अपनी ओर आकृष्ट कर सके और एक ऐसी सुव्यवस्थित मर्यादा की स्थापना कर सकें जो चिरकाल तक अक्षुण्ण रहने वाली हो।

यद्यपि हम को वेदों में कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है, जिस से पाषाण-पूजा सिद्ध होती, तो भी ऐसी रचनाएं दृष्टिगोचर होती हैं, जिन से अग्नि-पूजन, वायु-पूजन, जल-पूजन और चन्द्र सूर्य इत्यादि का पूजन ध्वनित होता है और ऐसी कोई रचना नहीं उपलब्ध होती जिन में इन पदार्थों की पूजा को निषिद्ध कहा गया हो।

हम यह कैसे मान लें कि वह सब सम्प्रदाय असत्य मार्ग का अवलम्बन किए हुए हैं जो इन विविध पदार्थों के पूजक हैं? और यह नवोत्पन्न एक आर्य समाज ही इन में सच्चा है? वे लोग जो इन पदार्थों की पूजा करते हैं, उनके पास इस बात की पुष्टि के लिए स्पष्ट प्रमाण हैं और दूसरी ओर, आर्य समाज के पास अपनी उस घोषणा के लिए स्पष्ट वैदिक प्रमाण नहीं कि अग्नि वायु और जल इत्यादि सभी नाम उसी परमेश्वर के ही हैं। उनकी प्रतिज्ञा तो स्वयं उनके लिए भी साध्य बनी हुई है। यदि उनकी यह घोषणा सन्तोष रीति से सिद्ध हो जाती तो बनारस के विद्वान पण्डित या और दूसरे शहरों के हिन्दू विद्वान इनके दावे को स्वीकार कर चुके होते। यद्यपि यह तीस-पैंतीस साल से नवजात सम्प्रदाय—आर्य समाज—निरन्तर और नए सिद्धान्तों को फैलाने का प्रयास करता रहा है। तो भी बहुत थोड़े हिन्दुओं ने आर्य समाज का सिद्धान्त स्वीकार किया। आर्य समाज के अनुयाइयों की संख्या सनातन धर्म के अनुयाइयों की तुलना के सम्मुख या हिन्दू धर्म के दूसरे सम्प्रदायों की तुलना के सम्मुख-नगण्य है।

अस्तु, नियोग का सिद्धान्त भी वेदों के ही मत्थे मढ़ा जाता है। मानव स्वभाव तथा मर्यादा कभी भी इस घृणित सिद्धान्त का समर्थन नहीं कर सकती। हम तो इस बात को वैदिक शिक्षा ही नहीं मानते। हमारा दृढ़ विश्वास है कि किसी स्वार्थ साधन के प्रयोजन से इस तरह की शिक्षाएं वेदों पर आरोपित की गई हैं। बहुत सी शिक्षाएं प्रक्षिप्त रूप से वेदों में सम्मिलित कर दी गई हैं। वेद बहुत ही प्राचीन

ग्रन्थ हैं। यह बहुत सम्भव है कि एक काल के उपरान्त दूसरे काल में वेदों के नये नये संस्करणों में नये परिवर्तन पण्डितों के द्वारा किये गये।

वेदों की अपौरुषेयता और सत्यता के लिये हमारे लिये तो यही ज्वलन्त प्रमाण है कि आर्यावृत के करोड़ों आदमी हजारों साल से इन को अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान मानते चले आ रहे हैं। यह असम्भव है कि किसी झूठी मिथ्यारोपी पुस्तक को ऐसी प्रतिष्ठा और आदर प्राप्त हो सके जैसी प्रतिष्ठा और जिस आदर को वेदों ने चिरकाल से प्राप्त कर रखा है।

जब तरह तरह की कठिनाइयों के होते हुए भी ईश्वर से डर कर हम वेदों को ईश्वरीय ज्ञान मानते हैं और जो भी किसी प्रकार की कोई त्रुटि है उसे वेदों के भाष्यकारों और टीकाकारों की ही त्रुटि समझते हैं, तब फिर भला क़ुर्आन करीम पर क्यों कटु प्रहार किए जायें, उस पवित्र क़ुर्आन पर जो प्रारम्भ से लेकर अन्त तक एकेश्वरवाद की शिक्षा देने वाली पुस्तक है। जिसने कहीं भी सूर्य, चन्द्र इत्यादि की पूजा की शिक्षा नहीं दी। प्रत्युत शिक्षा दी, तो बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में इस बात की :—

لَا تَسْجُدُوْا لِلشَّمْسِ وَلَا لِلْقَمَرِ وَاسْجُدُوْا لِلّٰهِ الَّذِیْ خَلَقَهُنَّ

अर्थात् सूर्य और चन्द्र की पूजा न करो, किन्तु उस पारब्रह्म की पूजा करो, जिसने इनको उत्पन्न किया है।

(41 : 37)

इसके अतिरिक्त यह भी है कि क़ुर्आन शरीफ़ अपने साथ नूतन और प्राचीन ईश्वरीय चिन्हों की साक्षी भी रखता है। फिर दर्पण की भान्ति यह हम को ईश्वर का स्वरूप दिखलाता है। क्यों नहीं हमारे साथ वैसा ही उपयुक्त और उचित व्यवहार किया जाता जैसा हम उनके साथ करते हैं? घृणा और शत्रुता के भावों के बीज इस भूमि में क्यों बोये जाते हैं? क्या इस बात की आशा की जा सकती है कि यह बीज उत्तम फल लायेगा? क्या यह उचित है कि जो व्यक्ति किसी के लिए पुष्प बोता है उसी के मार्ग में काँटे बोये जायें? वह तो उपहार में पुष्प उपस्थित करता है किन्तु बदले में उस पर पत्थर फैके जाते हैं। क्या यही सभ्यता है कि जो पीने के लिए दुग्ध उपस्थित करे उसी पर मूत्र और विष्टा फैंका जाये?

यदि इस प्रकार की मैत्री और शान्ति-स्थापना के लिए हिन्दू और आर्य समाजी उद्यत हों कि वे हमारे परमर्षि हज़रत मुहम्मद साहिब (ईश्वर उन पर विशेष अनुग्रह और कृपा करे) जो परमात्मा की ओर से अवतार हैं को सत्यवादी अवतार और संसार का सुधारक स्वीकार कर ले तथा उनके प्रति अपशब्द कहना छोड़ दें, उनका अपमान करना त्याग दें तथा इस संसार का अन्तिम अवतार मान लें तो सर्व-प्रथम मैं प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर करने के लिए प्रस्तुत हूं कि समस्त अहमदिया सम्प्रदाय सदैव के लिए वेद के ईश्वर प्रदत्त होने का साक्षी होगा तथा वेद व उनके ऋषियों का प्रेम व प्रतिष्ठा और आदर से नाम लेगा यदि हम इस प्रतिज्ञा पत्र के प्रतिकूल आचरण करें तो हम हिन्दू जनता की सेवा में तीन लाख रुपया दण्ड स्वरूप में देंगे। यदि हिन्दू जनता हम से हार्दिक सन्धि व मैत्री करना चाहती है तो वह भी इस प्रकार का प्रतिज्ञा पत्र लिख कर उस पर हस्ताक्षर कर दे और उस प्रतिज्ञा पत्र का यह लेख होगा कि हम (आर्य समाजी और हिन्दू धर्म के समस्त सम्प्रदाय) श्रद्धेय हज़रत मुहम्मद साहिब (ईश्वर

उन पर विशेष अनुग्रह और कृपा करे) के सत्यवादी होने पर पूर्ण विश्वास रखते हैं और उन्हें सत्यवादी अवतार मान कर उनकी पावन शिक्षा के अनुगामी होते हैं, हम सर्वदा उनको आदर और सम्मान की दृष्टि से स्मरण करेंगे। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार एक विश्वास पात्र करता है और यदि हम सन्धि पत्र को पूर्ण करने में असफल सिद्ध हों तो तीन लाख का धन अहमदिया सम्प्रदाय के नेता को इस सन्धि पत्र के उपलक्ष्य में देंगे।

इस समय अहमदिया सम्प्रदाय के सदस्य लगभग चार लाख हैं अतः इतने महत्वपूर्ण कार्य के लिए तीन लाख रुपया इकट्ठा करना कोई बड़ी बात नहीं है। अन्य मुसलमान जो इस सम्प्रदाय से बाहिर हैं उनके तो विचारों की विशृङ्खलता के साथ-साथ स्वभावों में भी घोर विकार और बक्रता उत्पन्न हो गई है। उनका कोई एक ऐसा नेता नहीं जिसके नेतृत्व का अनुसरण करना उनके निकट आवश्यक है (अर्थात् वह एक सेना है जिसका कोई भी सेनापति नहीं) अतएव उनके विषय में मैं कुछ नहीं कह सकता कि इस महत्वपूर्ण कार्य में वह हमारा साथ देंगे या नहीं। वह तो स्वयं मुझ को ही पथ भ्रष्ट, अविश्वासी तथा धर्महन्ता कहते हैं। फिर भी मुझे आशा है कि यदि हिन्दू मेरे साथ ऐसी प्रतिज्ञा कर लेंगे तो फिर अन्य मुसलमान ऐसा घृणित कार्य न करेंगे कि इस प्रकार के सभ्य तथा शिष्टाचार से युक्त हिन्दू जाति के अवतारों, धर्म ग्रन्थों और महापुरुषों का अपशब्दों द्वारा निरादर करके, उनके विषय में अपमान जनक बातें करके (प्रतिक्रियास्वरूप) अपने महामान्य परमर्षि हजरत मुहम्मद साहिब (ईश्वर उन पर सदैव कृपा की छाया रखे) का अपमान करावें। यदि मुसलमानों की किसी अनुचित क्रिया के फलस्वरूप, हिन्दुओं द्वारा हजरत मुहम्मद साहिब ईश्वर के अवतार का अपमान किया गया तो यह घृणित कार्य मुसलमानों की ओर से समझा जायेगा। चूँकि ऐसा कार्य शालीनता और भद्रता के ही

प्रतिकूल है अतः मुझे यह आशा नहीं कि ऐसी प्रतिज्ञा हो जाने के पश्चात् भी वे (मुसलमान) अपनी वाणी अथवा लेखनी द्वारा हिन्दुओं के धर्मग्रन्थों और अवतारों व ऋषियों के विषय में अप-शब्द कहेंगे। परन्तु यह आवश्यक होगा कि इस प्रतिज्ञा-पत्र (सन्धि अथवा मैत्री पत्र) को सुदृढ़ रखने के लिए पत्र पर दोनों पक्षों के न्यूनाधिक दस दस हजार बुद्धिमान और समझदार व्यक्तियों के हस्ताक्षर हों।

प्रिय देशवासियो! शान्ति के समान उत्तम वस्तु और कोई नहीं।

हम लोगों को इस तरह समझौते से एक राष्ट्र और एक मानव जाति के रूप में परिणत हो जाना चाहिए। आप देखते हैं कि देश में परस्पर कितना विरोध भाव है, और जानते ही हैं कि कलह को बढ़ाने वाली परस्पर की निन्दा और इस कटु भाषण से देश को कितनी हानि उठानी पड़ी है। आईये और परस्पर के सौहार्द के मधुर फल का रसास्वादन कीजिये। समझौते का यही एक उपाय है। किसी अन्य उपाय से समझौता और शान्ति का प्रयत्न ऐसा ही होगा कि किसी ऐसे फोड़े को जो ऊपर से साफ और स्वच्छ दीख पड़ता है, देख कर या विश्वास कर लिया जाए कि 'बाहर से तो देखने में चमकीला और चिकना है, किन्तु उस के भीतर दूषित और बदबूदार पीप भरा है।

मैं यहां इस बात को भी प्रकट करने से नहीं रुकूंगा कि प्रति दि बढ़ते जाने वाले विरोधों का मूल केवल धार्मिक मतभेद ही नहीं अपितु इसके मूल में राजनैतिक परिस्थिति का भी भाग है।

अस्तु, हिन्दुओं को सदा इस बात की इच्छा रही है कि देश शासन व्यवस्था में उनका विशेष भाग रहे, विशेष महत्व के प्रश्नों उनकी अनुमति ली जाये, और उनको इस बात का अवसर दि

जाये कि अपने कष्टों को उचित रूप में शासकों के सम्मुख रख सकें और उनकी यह भी आकांक्षा रही है कि शासन सम्बन्धी उच्च पद का—यूरोपियन लोगों के समान ही वे भी अधिकार पायें।

इस उद्देश्य की पूर्ति के प्रयत्न में हिन्दुओं से पृथक् रह कर मुसलमानों ने भूल की। इन्होंने सोचा कि हिन्दुओं से इनकी जनसंख्या न्यून है, अतः इस भांति के उद्योगों का फल भी वही प्राप्त कर लेंगे। मुसलमान लोग इन प्रयत्नों में हिन्दुओं से केवल पृथक् ही नहीं रहे, अपितु उन्होंने हिन्दुओं के प्रयत्नों में बाधाएं भी डालीं। इसका परिणाम यह हुआ कि पारस्परिक ईर्ष्या द्वेष के वे भाव जो धार्मिक मत भेदों के कारण पहले से ही थे और भी बढ़ गये। मैं इस बात पर विश्वास नहीं कर सकता कि पारस्परिक घृणा और विरोध के लिए यह कोई प्रबल कारण है? मैं उनके साथ भी सहमत नहीं हूं, जिनका विचार है कि हिन्दू और मुसलमानों के पारस्परिक विरोध का कारण धार्मिक मत-भेद नहीं है, अपितु इस विरोध का कारण है राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा।

राजनैतिक मत-भेद

प्रत्येक व्यक्ति यह समझ सकता है कि हिन्दू जब अपने न्याय-संगत अधिकारों की प्राप्ति का उद्योग करते हैं तब इन की न्यायानुकूल बातों में भी मुसलमान हिन्दुओं के साथ क्यों सहयोग नहीं देते? क्या कारण है कि मुसलमान कांग्रेस से पृथक् रहते हैं? और क्या कारण है कि जब मुसलमानों ने यह समझ भी लिया कि शिक्षित हिन्दू लोग कांग्रेस के द्वारा जिस बात का सहयोग कर रहे हैं, वह उचित और वस्तुतः न्याय संगत है और हमें भी इन का अनुकरण करना ही चाहिए तब भी उन्हों ने कांग्रेस के साथ सहयोग न करना चाहा?

अपितु उन्हीं उद्देश्यों और लक्ष्यों को सामने रख कर मुसलमानों ने आल इण्डिया मुसलिम लीग के नाम से सर्वथा पृथक् एक अञ्जुमन स्थापित कर ली। किन्तु उनका सहयोग पसन्द न किया। इस घटना का समन्वय कैसे किया जाए कि राजनैतिक लक्ष्यों में हिन्दुओं और मुसलमानों का दृष्टिकोण सर्वथा एक होते हुए भी मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ उनकी संस्था में रह कर उन को अपना सहयोग क्यों न देना चाहा? भाईयो! इसका मूल कारण धर्म को भिन्नता ही है। यदि यही हिन्दू इस बात की घोषणा करते हुए कि 'अल्लाह' के अतिरिक्त और कोई परमेश्वर नहीं है, और मुहम्मद उसका रसूल है, इस्लाम को स्वीकार कर लें अथवा यही मुसलमान हिन्दू धर्म को स्वीकार करके वैदिक विधि से अग्नि, वायु इत्यादि की पूजा प्रारम्भ कर दें और इस्लाम को छोड़ दें, तो बस वे सब मत भेद जिनको राजनतिक कहा जाता है, तत्काल ही ऐसे विलीन हो जायेंगे मानों कभी इनकी सत्ता ही नहीं थी। इस से यह प्रकट है कि पारस्परिक विरोध का मूल हेतु तो धार्मिक मत भेद ही है। यह धार्मिक मत भेद ही जब अपनी पराकाष्ठा को पहुंचता है तो रुधिर की नदियां बहा देता है।

मेरे मुसलमान भाईयो! चूंकि इस्लाम धर्म के अनुयायी होने के कारण तुम्हें हिन्दू लोग (धार्मिक मत भेद के कारण) अपने से बाहर और अपना विरोधी समझते हैं, और तुम भी इस धार्मिक मत भेद के कारण उन्हें अपना विरोधी समझते हो तो इस परिस्थिति में विरोध के इस मूल कारण को हटाए बिना यह असम्भव है कि तुम्हारे हृदय एक दूसरे के प्रति अनुराग और सहानुभूति के लिए विशुद्ध हो सकें। परन्तु वास्तविक शान्ति और सुख उस समय तक नहीं पा सकते हो जब तक हिन्दू सच्चे हृदय से इस बात को न स्वीकार कर लें कि हमारा पवित्र नबी ईश्वर-प्रेषित वस्तुतः सच्चा अवतार (Prophe है। स्मरण रखिये कि आप में और हिन्दुओं में सच्ची मैत्री और शान्ति

कराने वाला यही उपाय है। जल जैसे मलिनता का प्रक्षालन कर देता है वैसे ही यह उपाय तुम्हारे हृदयों को विशुद्ध और निर्मल कर देगा। यदि इन दोनों वियुक्त सम्प्रदायों के मिलाप का और मैत्री का शुभ समय आ गया है तो परमात्मा इन के भी हृदयों को उसी भांति स्वच्छ और विशाल करके इस मैत्री-योजना को स्वीकृत करा देगा, जिस प्रकार उसने हमारे हृदयों को विशुद्ध और विशाल कर दिया है।

इस योजना के साथ ही साथ हमारा यह भी कर्त्तव्य होगा कि हम अपने हिन्दू भाईयों के साथ स्नेह और सहानुभूति का व्यवहार करें और सदा सहिष्णुता, सुशीलता और दयाभाव से बर्ताव करें। हम को ऐसी प्रत्येक बात से बचना चाहिए जिस से हिन्दुओं को क्लेश पहुंचने की सम्भावना हो। हां बातें ऐसी न हों जो हमारी धर्म चर्या में अपरिहार्य कर्त्तव्य (फर्ज़) ठहरायी गई हों। इस योजना के अनुसार यदि हिन्दू जनता हमारे परमर्षि महामान्य हज़रत मुहम्मद साहिब जो परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट अवतार हैं को सत्यवादी ईशदूत (Prophet) स्वीकार कर लें तो जो हिन्दू और मुसलमानों के मध्य में गाय की कुर्बानी के कारण एक विकेट विरोध की समस्या है उसे भी समाप्त कर दिया जाएगा, क्योंकि स्मरण रहे कि गाय की कुर्बानी फर्ज़ या आवश्यक कर्त्तव्य नहीं ठहराया गया है। आवश्यक कर्त्तव्य और अनिषिद्ध कार्य में अन्तर है। यह आवश्यक नहीं है कि अनिषिद्ध कार्य को जरूर किया जाए। बहुत सी और भी ऐसी बातें हैं, जिन को निषिद्ध नहीं ठहराया गया, मगर फिर भी हम उन को कभी अपने आचार व्यवहार में लाते ही नहीं हैं। मानव मात्र के साथ बन्धु भाव रखते हुए उनके साथ सहिष्णुता और दया के साथ प्रेम पूर्ण सद्-व्यवहार करना और सद्-भाव रखना भी उतना ही आवश्यक धार्मिक कर्त्तव्य (फर्ज़) है जितना आवश्यक कर्त्तव्य 'एक परमात्मा' के ऊपर विश्वास रखना। यह बात ईश्वरीय नियमों के कदापि

विरुद्ध नहीं कि किसी महत्वपूर्ण और परम हितकारी कार्य की पूर्ति के लिए किसी गौण बात या कार्य का परित्याग कर दिया जाए। किसी वस्तु के प्रयोग में लाने की आज्ञा का दिया जाना एक पृथक् बात है और उसका प्रयोग करना एक पृथक् बात है (भारत में मदिरा के व्यापार की सरकार की ओर से खुली आज्ञा है किन्तु मदिरा खुले बाजार बिकने पर भी कई व्यक्ति ऐसे हैं जो फिर भी मदिरा नहीं पीते।

धर्म के अन्तर्गत इन बातों का समावेश होता है :—

(1) वर्जित कर्मों का परित्याग करना। (2) ईश्वर की प्रसन्नता को प्राप्त करने का प्रयत्न करते रहना। (3) ईश्वर के सब प्राणियों के प्रति दया भाव और सहानूभूति रखना। (4) संसार के विभिन्न भागों में और विभिन्न युगों में जितने भी अवतार या नबी ईश्वर की ओर से संसार के सुधार के लिए आए हैं, उन सभी पर विश्वास रखना तथा उन में किसी प्रकार का भेद भाव न करना। (5) मानव मात्र के साथ अपनी ओर से दयालुता का व्यवहार करना। इस्लामम के अन्तर्गत यह सभी बातें आ जाती हैं।

किन्तु हमारे लिए यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि उन लोगों के साथ शान्ति और सुलह से रह सकें और हमारे पवित्र नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफा (उन पर ईश्वर की कृपा और अनुग्रह हो), पर अनुचित और घृणित आक्षेप करते रहते हैं। मैं सत्य कहता हूं कि हमारे लिए मरुस्थल के सर्पों के साथ और जंगलों के भेड़ियों के साथ शान्ति से रह सकना सम्भव है किन्तु यह असम्भव है कि हम उन लोगों के साथ शान्ति से रह सकें जो हमारे पवित्र नबी पर आक्षेप करते हैं। जो हमें अपने मां बाप से और स्वयं अपनी जान से भी अधिक प्यारे हैं। हमें मुसलमान रहते हुए मृत्यु प्रिय होगी, किन्तु अपने विश्वास

का हम परित्याग नहीं कर सकते। मैं किसी सम्प्रदाय विशेष के ऊपर अनुचित आक्षेप नहीं करना चाहता और न मेरी इच्छा किसी को भी क्लेश पहुंचाने की है, किन्तु दुःख के साथ मुझे यह कहना पड़ता है कि 'कुर्आन' मजीद के साथ और इस्लाम के साथ और इस्लाम धर्म के सर्वोतकृष्ट अवतार के साथ घोर अन्याय हो रहा है। स्मरण रहे कि इस्लाम वह पवित्र और शान्ति का इच्छुक धर्म है, कि इसने कभी किसी भी सम्प्रदाय के नेताओं पर आक्रमण नहीं किया। कुर्आन वह उत्तम ग्रन्थ है जिसने इस बात का आधार शिला रख कर संसार में शान्ति की सुव्यवस्था का द्वार खोला कि—'सब जातियों के सभी अवतारों पर विश्वास करो'। यह शिक्षा संसार के और किसी भी पवित्र धर्म-ग्रन्थ में नहीं मिलती। संसार के नबियों (Prophets) या अवतारों के सम्बन्ध में कुर्आन शरीफ़ का आदेश है—

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ أَحَدٍ مِّنْهُمْ وَنَحْنُ لَهُ مُسْلِمُونَ

अर्थात् हे मुसलमानों! कहो कि हम संसार के सभी नबियों या अवतारों पर विश्वास रखते हैं, और उन में किसी प्रकार का भेद-भाव इस बात में नहीं करते कि कुछ पर विश्वास करें और कुछ पर न करें।
(2 : 166, 6 : 86)

यदि संसार में कोई अन्य पुस्तक ऐसी हो जिस में इस तरह की शान्तिमय शिक्षा दी गई हो, तो उसका नाम बताया जाए कुर्आन ने परमात्मा के वरदान को किसी जाति विशेष तक ही सीमित नहीं किया है। इस ने इसराईल वंशज सभी नबियों अर्थात् जैकब (Jacob), आइजक (Issac), मोसेस (Moses) डेविड (David) और जेसस (Jesus) को स्वीकार किया है, और किसी भी नबी या

अवतार को—चाहे वह भारतवर्ष का हो चाहे फारिस का, झूठा और मायावी नहीं कहा। अपितु कुर्आन ने तो यह घोषणा की है कि संसार की सब जातियों में अवतार (नबी) हुए हैं, और इस पद्धति से इसने मानव जाति में शान्ति की सुव्यवस्था की आधार शिला रखी। अतः यह बहुत दुःखद बात है कि शान्ति के प्रचारक और संस्थापक, इस नबी का निरादर किया जाए।

चेतावनी

मेरे प्रिय देशवासियो! मैंने यह सब आप को क्लेश पहुंचाने या आप के चित्त को दुःखाने के लिए नहीं कहा। मैं सद्भाव और शुद्ध हृदय से यह निवेदन करना चाहता हूं। जिन्हों ने अपने से भिन्न सम्प्रदाय के अवतार पुरुषों (नबियों) की निन्दा करना और उनके ऊपर निराधार आक्षेप करना ही अपना धार्मिक कर्त्तव्य समझ रक्खा है। वे न केवल परमात्मा के सम्मुख ही पापभागी हैं अपितु वे विभिन्न सम्प्रदाओं में भी द्वेष के बीज बोने के भी अपराधी हैं। आप मुझे बतलाइए, कि यदि कोई किसी दूसरे के पिता के सम्बन्ध में अपशब्द कहता है, या किसी दूसरे की माता को कलंकित करता है, तो क्या वस्तुतः वह अपने ही माता पिता के आदर को आघात नहीं पहुंचाता? मान लीजिए वह व्यक्ति जिसके माता-पिता का अपशब्दों द्वारा अनादर किया गया है, बदले में दूसरा ठीक वैसा ही प्रत्युत्तर दे, तो क्या उस व्यक्ति को ही जिसने इस तरह की बात को प्रारम्भ किया था, स्वयं अपने माता पिता के आदर का शत्रु नहीं समझेंगे? देखिए, परमात्मा ने दूसरों के सम्मान और आदर पर दृष्टि रखने का कैसा प्रबल आदेश दिया है। ईश्वर का आदेश है—

لَا تَسُبُّوا الَّذِينَ يَدْعُونَ مِنْ دُونِ اللَّهِ
فَيَسُبُّوا اللَّهَ

अर्थात्, मूर्तिपूजकों की मूर्तियों की निन्दा न करो, अन्यथा बदले में वह भी तुम्हारे ईश्वर की निन्दा करेंगे और गालियां देंगे यह न जानते हुए कि वस्तुतः ईश्वर है कौन।"

(3 : 109)

यद्यपि कुर्आन की शिक्षा के अनुसार मूर्तियों का कोई पद है ही नहीं, तो भी परमात्मा ने मुसलमानों को आदेश दिया है कि मूर्तियों की निन्दा न करें। अन्यथा मूर्तिपूजक उत्तेजित हो उठेंगे और बदले में ईश्वर की निन्दा करने लग जाएंगे और इस तरह स्वयं मुसलमान ही अपने ईश्वर की अपशब्दों द्वारा निन्दा कराने के मूल कारण बनेंगे। भला ज़रा इस शिष्टाचार के साथ उनके व्यवहार की तो तुलना कीजिए जो इस्लाम के नबी की निन्दा अपशब्दों द्वारा करते हैं, और इस पर लांछन लगाते हैं, तथा इस अवतार के चरित्र पर भयंकर एवं कुत्सित दोषारोपण करते हैं।

हमारा पवित्र अवतार वह महापुरुष है कि जिसके नाम मात्र पर इस्लाम के अनुयायी बड़े बड़े राजाधिराज अपने राज सिंहासन को छोड़कर नीचे उतर आते हैं और अपने लिए यह बात बड़े आदर और गर्व की समझते हैं कि वे उसके परम श्रद्धालु हैं! क्या यह आदर ईश्वर प्रदत्त नहीं हैं? ऐसे व्यक्ति की अवहेलना और निरादर करना—जिस व्यक्ति का आदर स्वयं ईश्वर ने भी किया हो—स्पष्ट रूप से ईश्वर से ही युद्ध करना है। हमारे पवित्र नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (ईश्वर

की कृपा और शान्ति उन पर हो) ईश्वर द्वारा चुने हुए वह अवतार हैं। जिन के महत्व को प्रकट करने के लिए ईश्वर ने संसार को अति अद्भुत बातें दिखलाई हैं। क्या यह ईश्वर के स्वयं अपने हाथ का कार्य नहीं है? लगभग कई करोड़ मुसलमान उनके अनुयायी हैं। (अब तो संसार का लगभग एक तिहाई भाग उस पवित्र विभूति का अनुयायी है।)

प्रत्येक अवतार या नबी अपनी शिक्षा की सत्यता के प्रमाण रखता है, किन्तु संसार ने इस पवित्र नबी की शिक्षा की सत्यता के लिए जितने प्रमाणों को पाया, और लगातार पा रहा है, इसकी तुलना और किसी के साथ नहीं हो सकती। जब जब संसार में धर्म की हानि और अधर्म और अनाचार की वृद्धि होती है, पाप तथा दुष्कर्म बढ़ जाते हैं, पुण्य तथा सुकर्म लुप्त हो जाते हैं, तब ईश्वर की अनुकम्पा इस बात की इच्छा करती है कि अब कोई पथ प्रदर्शक, सुधारक, ईश्वर का दूत संसार की दशा के सुधार के लिए भेजा जाए। यदि रोग होगा तो वैद्य की भी आवश्यकता होगी। हिन्दू इस दृष्टिकोण को समझ सकते हैं। इन का विश्वास है कि वेदों का आविर्भाव उस समय नहीं हुआ जब संसार में पाप का बाहुल्य था अपितु उस समय हुआ जब संसार में पाप का अभाव था। अतः देखिए, जब ईश्वर ने उस समय भी अपनी पथप्रदर्शक शिक्षा को भेजा जब संसार में पाप था ही नहीं तो विचारिए ऐसे समय में तो किसी पथ प्रदर्शक की आवश्यकता कितनी युक्ति युक्त है जब संसार पाप और दुष्कर्म का भण्डार बन गया हो, संसार के प्रत्येक भाग में पापों की धारा प्रवाहित हो रही है। मैं समझता हूं कि आप लोगों में से कोई भी उन ऐतिहासिक घटनाओं से अपरिचित न होगा जिन घटनाओं के मध्य में हमारे पवित्र अवतार महामान्य हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा, (उन पर ईश्वर की सदैव कृपा दृष्टि रहे) का प्रादुर्भाव हुआ था। उस समय सारे संसार में घोर अज्ञानान्धकार छाया

हुआ था। इस पृथ्वी का कोई भी भाग ऐसा न रह गया था, जो पाप और दुष्कर्मों से बचा रहा हो।

इस बात को तो पण्डित दयानन्द ने भी स्वयं स्वीकार किया है। वह सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि आर्यावृत में भी ईश्वर पूजा का स्थान मूर्ति पूजा ने ले लिया था, और वैदिक धर्म में भी बहुत सी बुराईयां आ गई थीं।

पवित्र नबी हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (ईश्वर की कृपा और शान्ति उन पर हो) के समय संसार की जो दुरावस्था और दुर्दशा थी उस के विषय में यूरोपियन मिशनरी रेवरेण्ड मिस्टर सी० जी० फेण्डर (Rev. Mr. C. G. Pfender) भी साक्षी देते हैं। यह अपनी पुस्तक "मीज़ानुल हक" (Mizan-ul-Haq) में स्वीकार करते हैं कि उस समय ईसाई लोग अत्याधिक भ्रष्ट और पतित हो चुके थे। इन के अनाचार और दुष्कर्म ईसाई धर्म के लिए लज्जा-जनक थे। क़ुर्आन ने स्वयं अपने आप अपने आविर्भाव की आवश्यकता को इन शब्दों में बतलाया है :—

ظَهَرَ الْفَسَادُ فِي الْبَرِّ وَالْبَحْرِ

अर्थात्, "पृथ्वी और समुद्र दोनों ही दूषित हो गये थे" (30 : 41) इसका अभिप्राय यह है कि समस्त मानव जाति चाहे वे असभ्य और असंस्कृतों में से थे या चाहे जो अपने को शिष्ट और शिक्षित समझते थे, तथा महा द्वीपों के रहने वाले अथवा समुद्र के मध्य में छोटे छोटे द्वीपों में बसने वाले सब के सब दूषित हो चुके थे। अर्थात् समस्त भूमण्डल पर पाप ज़ोरों पर था।

सब की साक्षियां इस बात को प्रमाणित कर रही हैं कि पवित्र नबी के आगमन के समय सारी मनुष्य जाति दूषित हो गई थी। यह मनुष्य चाहे पूर्व के थे चाहे पश्चिम के, चाहे यह आर्यावृत के निवासी चाहे अरब की मरुभूमि के, चाहे वह द्वीपों के रहने वाले थे चाहे महाद्वीपों के इन सब ने ईश्वर से अपना सम्बन्ध और सम्पर्क हटा लिया था। दुष्कर्मों ने भूतल को दूषित कर दिया था। क्या इस से हम यह नहीं समझ सकते कि यह अवसर बहुतः ऐसा ही था कि किसी महान् विभूति का प्रादुर्भाव हो ?

अब यह प्रश्न रह जाता है कि इस महान आत्मा ने कौन से सुधार किये ? इस प्रश्न के विषय में मैं यह कहूंगा कि इसका उत्तर कोई मुसलमान जैसा सुन्दर और स्पष्ट अपने नबी के विषय में दे सकता है, वैसा सुन्दर और स्पष्ट उत्तर कोई ईसाई, यहूदी या आर्य अपने नबी या अवतार के विषय में नहीं दे सकता।

इस पवित्र आत्मा का पहला कार्य तो अरब वासियों की दशा को सुधारना था, जो कि ऐसे पतित और भ्रष्ट हो चुके थे कि उनको कठिनता से ही मनुष्य कहा जा सकता था। कोई भी ऐसा दुष्कर्म नहीं था, जो उनमें न था और कोई भी ऐसा दुराचार दृष्टिगोचर नहीं होता, जो उनमें फैला हुआ न था, चोरी और डकैती तो उनका दैनिक कार्य ही था। निरापराध मनुष्यों का रक्त बहाना उनके लिए कृमि कीट आदि को पैर से कुचल देने जैसा कार्य था। अनाथों की सम्पत्ति को हरण करने के लिए (अरब लोग) उनको मार डालते थे। अपनी अन्याओं को जीवित ही भूमि में गाड़ देते थे। व्यभिचार पर तो वह गर्व करते थे और अपनी कविताओं में स्पष्ट रूप से अश्लील बातें कहते थे। यह बातें अत्यन्त नीच होती थीं। मद्यपान की ऐसी बहुतात थी कि कोई भी घर इस व्यसन से खाली

नहीं था। द्यूत-क्रीड़ा में तो अन्य जातियों से अत्यधिक बढ़े हुए थे। पशुवृत्ति पराकाष्ठा को पहुंची हुई थी। हिन्सा में हिस्र पशुओं से उनके कार्य कम न थे। किन्तु जब उस पावन विभूति ने उनको नव जीवन प्रदान करना आरम्भ किया, और उस पवित्र आत्मा ने जब अपना समय उनको पवित्र और शुद्ध करने में लगाना शुरू किया और अपने पवित्र आचार का उन पर प्रभाव डाला तो थोड़े ही दिनों में वे लोग जंगली से मनुष्य बन गए और मनुष्य से सभ्य मनुष्य बन गए, और सभ्य मनुष्य से ईश्वर भक्त बन गए और अन्ततः फिर वे ईश्वर के अनुरागी और उसकी भक्ति से ऐसे परिपूर्ण हुए कि उन्होंने ईश्वर के निमित महान् कष्टों को सहा और उनके निमित घोर आपत्तियों को सहर्ष अंगीकार किया। प्रत्येक प्रकार की यातनाएं उन्हें दी गईं, निर्दयता पूर्वक उन को कोड़े मारे गये, गर्म बालू पर उनको घसीटा गया, लोहे की शृंखलाओं से उन्हें बांधा गया और मरणासन्न अवस्था तक उनको भूखा रखा गया, किन्तु वे फिर भी विचलित न हुए अपितु इन यातनाओं ने उन को सुधार की ओर आगे ही बढ़ाया। बहुतों के बाल बच्चे उन्हीं के सम्मुख मार दिए गए और बहुतों को उनके बाल बच्चों के गले में देखते देखते ही फांसी डाल कर लटका दिया गया। जिस दृढ़ विचार के साथ यातनाओं के द्वारा पीड़ित होते हुए और अपने जीवन की आहुति देते हुए भी वे अपने संकल्प में दृढ़ रहे, उनके स्मरण मात्र से ही आँखों से आंसू टपकने लगते हैं। भला वह कौन सी बात थी जिसने इस तरह उनको इस्लाम की ओर आकृष्ट किया, और उनके जीवन में ऐसा परिवर्तन कर दिया कि वे एक ऐसे व्यक्ति की ओर आकृष्ट हुए जो मक्का की गलियों में उपेक्षित तथा असहाय था? यह ईश्वरीय प्रभाव ही था जो उनके हृदयों का संचालन कर रहा था। किसी विशेष प्रभावशाली शक्ति ने ही उनको पतन की गहराई से निकाल कर आध्यात्मिकता के उच्च शिखिर पर पहुंचा दिया।

आश्चर्य तो इस बात का है कि इस्लाम को स्वीकार करने के पूर्व उन में बहुत से तो इस पवित्र नबी के घोर शत्रु थे और बहुत से तो उसके ख़ून के प्यासे थे। मेरे विचार में तो इस से अधिक कौतूहल की और कोई बात सम्भव नहीं है कि एक दरिद्र, दीन और असहाय व्यक्ति ने उन लोगों के हृदयों से प्रत्येक बुराई को पृथक् कर दिया और उनको अपनी ओर ऐसा आकृष्ट किया कि वे अपने वैभव सूचक वस्त्र आदि का परित्याग कर, दास बन गए और टाट पहन कर सेवा में उपस्थित हो गए।

कुछ विवेक हीन और नासमझ, जो इस्लाम पर जिहाद (युद्ध) का आरोप लगाते हैं, और कहते हैं कि तलवार के द्वारा लोगों को विवश करके मुसलमान बनाया गया है। खेद है कि ऐसे विचार रखने वाले सत्य को छिपाने और अन्याय में मर्यादा का भी उल्लंघन कर गए हैं। वाह रे अन्याय ! खेद !! खेद !!! ऐसे लोगो की विवेक शक्ति का क्यों ह्रास हो गया कि वह जान बूझकर वास्तविक घटनाओं और परिस्थितियों से मुख फेर लेते हैं। हजरत मुहम्मद रसूले-अरबों ने अरब देश में कोई राजकुमार के रूप में जन्म नहीं लिया था और न राजा या सम्राट् के रूप में इनका प्रादुर्भाव हुआ था। यह नहीं कहा जा सकता है कि चूंकि उनके पास राजकीय वैभव और शक्ति थी अतः मनुष्य उनके पास आत्म रक्षा के निमित्त आकर एकत्र हो गए। आप तो एक दरिद्र दीन हीन असहाय व्यक्ति थे। वह व्यक्ति जिसने एकेश्वरवाद के और अपने अवतार होने के बारे में घोषणा प्रारम्भ की थी। उस समय उनके पास कौन सी तलवार थी, जिसके भय से मनुष्यों ने उनके धर्म को स्वीकार किया ? यदि वह लोग स्वेच्छा से उनके धर्म को स्वीकार न करते तो उनके पास कौन सी सेना थी जो उनके बुलावे पर आती या जिसकी सहायता से वह उन लोगों को अपने धर्म को स्वीकृत करने के लिए विवश कर सकता ?

सत्य की खोज करने वाले इस बात को जानते हैं कि इस प्रकार के दोषारोपण इस्लाम के शत्रुओं के स्वकल्पित हैं। इतिहास को देखिये। आप को शीघ्र ही मालूम हो जायेगा कि हमारा पवित्र नबी ऐसा अनाथ था, जिस के पिता का इन के पैदा होते ही स्वर्गवास हो चुका था और जिनकी माता भी इनको अल्पायु में ही छोड़ कर संसार से चल बसी। तब यह बालक ईश्वर की रक्षा के आश्रय पर ही पला और बढ़ा, किसी मनुष्य की सहायता से नहीं। अपनी अनाथ अवस्था में उसे अपने उन स्वामियों की भेड़ों की भी देख भाल करनी पड़ी जो आपको आश्रय देते थे। ईश्वर के अतिरिक्त आपका कोई रक्षक न था। यह महापुरुष पच्चीस वर्ष की आयु का भी हो गया तब भी उसके किसी भी चाचा ने अपनी कन्या का उस के साथ विवाह न किया क्योंकि उस के पास परिवार के व्यय आदि की सामग्री का कोई प्रबन्ध न था। उसको शिक्षा प्राप्त करने का भी अवसर न मिला और उसे किसी प्रकार के वाणिज्य-व्यवसाय का भी ज्ञान न था। जब आप लग भग चालीस वर्ष के हुए, आप का हृदय ईश्वर की ओर आकृष्ट हो गया। मक्का से कुछ मील की दूरी पर एक गुफा है जिस का नाम 'हिरा' है। आप वहां पर अकेले जाते और उस के अन्दर छिप जाते और अपने परमात्मा को याद करते थे। एक दिन आप उस गुफा में एकान्त में प्रार्थना कर रहे थे तब परमेश्वर आप पर प्रकट हुआ और आपको आज्ञा मिली, कि संसार परमात्मा के सन्मार्ग से पथ-भ्रष्ट हो गया है तथा पृथ्वी पापों से आप्लावित हो चुकी है। अतः मैं तुझे अपना रसूल, अवतार (Prophet) और समस्त पृथ्वी पर बसने वाली मानव जाति का सुधारक नियुक्त करके भेजता हूं। अब तू जाकर जनता में घोषणा कर दे तथा कह दे कि (तुम्हारे दुष्कर्मों के कारण) भविष्य में आने वाले दैवी प्रकोप से पूर्व परमात्मा की ओर आकृष्ट हो कर उसकी शरण में आ जा। इस आज्ञा के सुनते ही आप भयभीत हुए कि मैं एक

अशिक्षित साधारण मनुष्य हूं। तब ईश्वर से विनम्र भाव से प्रार्थना की कि भगवान ! मैं अशिक्षित हूं, मुझे पढ़ना लिखना कुछ नहीं आता (मैं यह कार्य कैसे कर सकूंगा) तब परमात्मा ने आपके हृदय और मस्तिष्क में अपनी विशाल ज्ञान राशि में से आध्यत्मिक विद्याएं और ज्ञान प्रविष्ट कर दिये तथा आप के हृदय तथा बुद्धि को दिव्य ज्योति से प्रकाशित किया।

आपकी आत्मिक शक्ति ने दीन हीन जिज्ञासुओं को आकृष्ट किया और वे आप के अनुरागी हो गए और जो बड़े बड़े अभिमानी और उद्धत थे उन्होंने आप का विरोध करना आरम्भ किया और अन्ततः उन्होंने निर्णय कर लिया कि आप को मृत्यु के घाट उतार देना चाहिए। आप के अनुयाइयों में से अनेक नर-नारी निर्दयता से मार डाले गए और अन्ततः आप को मृत्यु के घाट उतारने के लिए आप के घर का घेरा डाला गया, मगर जिसको ईश्वर रखे उस को कौन मारे। ईश्वर ने आपको अपनी ज्ञान ज्योति से सूचित किया कि आप इस नगर से निकल जाइए और मैं प्रति पग पर तुम्हारा सहायक रहूंगा। अतएवं आप मक्का नगर से अबूबकर को साथ लेकर निकल आए और तीन रात तक एक गुफा में छिपे रहे। जिसका नाम सौर गुफा है। पद-चिन्हों को देखते हुए उनकी खोज की गई और एक खोजी लेकर उनके पीछे बढ़ते गये। जब ये लोग (गुफा) तक पहुंचे तब पथ-प्रदर्शक ने कहा, इस गुफा में तलाश करो, इस के आगे अब पद-चिन्ह नहीं हैं और यदि इसके आगे गया हो, तो फिर आकाश पर चढ़ गया होगा। मगर ईश्वर की अद्भुत लीला का अतिक्रमण कौण कर सकता है ? ईश्बर ने एक ही रात में यह घटना करवा दी कि एक मकड़ी ने अपने जाले से गुफा के समस्त मूंह को बन्द कर दिया और एक कबूतरी ने गुफा के मूंह पर नीड़ बना कर अपने अण्डे दे दिये, और जब पथ-प्रदर्शक ने उन आदमियों को गुफा के भीतर

खोजने के लिये प्रोत्साहित किया, तब उन लोगों में से एक बूढ़ा आदमी बोला, यह पथ-प्रदर्शक तो पागल हो गया है, मैं तो इस जाले को गुफा के मुंह पर उस समय से देख रहा हूं जब कि मुहम्मद (ईश्वर की इन पर कृपा और अनुकम्पा हो) अभी पैदा भी नहीं हुआ था, इस बात को सुन कर सब अस्त-व्यस्त हो गए और गुफा के भीतर खोजने का विचार ही छोड़ दिया।

तत्पश्चात् महामान्य हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा (ईश्वर की इन पर कृपा हो) गुप्त रूप से मदीना पहुंचे। वहां पहुंचते ही मदीना की अधिकांश जनता उनकी शिक्षा को अपना कर उनकी अनुयायी बन गई। फलतः मक्का के निवासियों को ईर्ष्या हुई और अपने शत्रु की उन्नति देख कर उनके हृदयों में क्रोध की ज्वाला भड़कने लगी कि हमारा शिकार हमारे हाथों से निकल गया। अब क्या था, सारा मक्का आपको मदीना में ही समाप्त करने की चिन्ता और षडयन्त्र रचने में लग गया। मक्का में जिन अल्प संख्यक लोगों ने इस्लाम स्वीकार किया था वह भी अपनी प्रिय जन्म-भूमि मक्का नगरी को छोड़ कर दूसरे देशों और नगरों में चले गये। कुछ ने हब्शा (Abyssinia) के बादशाह के यहां शरण ले ली और कुछ अपनी निर्धनता के कारण अपना नगर नहीं छोड़ सकते थे। वे मक्का में ही रहे। उन को घोर कष्ट दिए गए, उन्हें कठोर यातनाएं सहनी पड़ीं। इनके करुण क्रन्दन का उल्लेख कुर्आण शरीफ़ में है कि किस प्रकार वे अहर्निश ईश्वर से प्रार्थना करते थे? विरोधियों और काफिरों के (जो कुरैश थे) अत्याचार सीमा को पार कर गए। उन्हों ने अबलाओं पर अत्याचार तथा न्याय का रक्त-करना आरम्भ कर दिया और कुछ को ऐसी निर्दयता से मारा कि उनको दोनों टांगें दो ऊटों की टांगों में रस्सों से बांध कर उन ऊंटों को विभिन्न दिशाओं में दौड़ाया, और इस प्रकार वे निरपराध अबलायें दो टुकड़े हो कर मृत्यु को प्राप्त हो गईं।

जब निर्दयी क़ुरैश काफ़िरों के अत्याचार और निर्दयता इस सीमा तक पहुंच गई जहां सहनशीलता की भी सीमा समाप्त हो जाती है तब उस दीनबन्धु, कृपालु, दयालु परमात्मा ने जो दीनों का त्राता और अपने भक्तों और सज्जन पुरुषों की रक्षा किया ही करता है अपने भेजे हुए दूत, (अवतार) हजरत मुस्तफ़ा को अपनी दिव्य ज्योति और अपनी दिव्य प्रेरणा देकर आज्ञा दी कि अब तुम भी अपनी रक्षा के लिए शत्रु का मुकाबला करो क्योंकि दुःखी, अत्याचारों से पीड़ित जनता के क्रन्दन और चीत्कार की कातर वाणी का स्वर मैंने सुन लिया है। आज मैं तुमको आज्ञा देता हूं कि तुम भी उनका मुकाबला करो और स्मरण रखो कि जो लोग निरापराध लोगों पर तलवार उठाते हैं वे तलवार द्वारा ही काल कवलित हो कर यमराज के मुख का ग्रास बनेंगे। किन्तु तुम किसी पर अनुचित हाथ न उठाना, परमात्मा अनुचित व्यवहार करने वालों से अपना सम्बन्ध नहीं रखता और न ही ऐसे लोगों को अपना मित्र बनाता है।

इस्लाम के जिहाद का वास्तविक तत्व यह है, और यह है उसका तथ्य जो उक्त पंक्तियों में दर्शाया गया जिसको अति कुरूपता से वर्णन करके इस्लाम के साथ यह घृणित व्यवहार किया गया है। निःसन्देह परमात्मा आशातीत सहनशील है परन्तु जब किसी जाति के अत्याचार सीमा का उल्लघन कर जाते हैं तो वह न्यायशील परमात्मा अत्याचार करने वाले को बिना दण्ड दिए नहीं छोड़ता तथा स्वयं उसके विनाश के लिए परिस्थिति उत्पन्न कर देता है। मुझे पता नहीं कि हमारे विरोधियों ने कहाँ से और किस से सुन लिया कि इस्लाम तलवार के द्वारा फैला है। परमात्मा ने तो क़ुर्आन शरीफ़ में स्पष्ट कह दिया है कि :—

لَا إِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ

अर्थात् इस्लाम धर्म में कोई ज़बरदस्ती नहीं। इस्लाम स्वीकार करने के लिए किसी प्रकार की विवशता नहीं है (यह सिद्धान्त सूर्य की तरह चमक रहा है) तो फिर किसने बल प्रयोग का आदेश दिया और फिर बल-प्रयोग से इस्लाम के प्रचार की कौन सी परिस्थितियां थीं? क्या लोग जो बलात् मुसलमान किए जाते हैं उनके यही विचार और यह विश्वास होते हैं कि अवैतनिक रूप में काम करने वाले केवल दो तीन सौ मनुष्य हज़ारों के दांत खट्टे करें और जब हज़ार हों तो लाखों शत्रुओं को पराज्य दे कर सुव्यक्त विजय प्राप्त करें? धर्म को शत्रु के आक्रमणों से बचाने के लिए वही अवैतनिक रूप से कार्य करने वाले कर्मचारी भेड़ बकरियों की न्याई अपने शरीरों को फटा दें तथा अपने रक्त से इस्लाम की सत्यता पर मोहर लगा दें, और परमात्मा के एकेश्वरवाद के प्रचार के लिए ऐसे दृढ़ प्रतिज्ञ और सच्चे प्रेमी हों कि एक साधारण जीवन रूप में या साधु जीवन के रूप में नाना प्रकार की कठोरताओं और कष्टों को उठा कर अफ्रीका के तप्ते हुए मरुस्थलों तक पहुंचें तथा उस प्रदेश में इस्लाम का प्रचार करें, नाना प्रकार की बाधाओ और विघ्नों को उठाकर चीन तक पहुंचें, युद्ध द्वारा नहीं अपितु साधु, सन्तों के रूप में उस देश में पहुंच कर इस्लाम का प्रचार करें। जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके मधुर उपदेशों से कई करोड़ मुसलमान इस पृथ्वी पर उत्पन्न हो गए और फिर टाट पहनने वाले दरवेश, साधुओं के स्वरूप में भारतवर्ष में आये और आर्यव्रत के एक बड़े भाग को इस्लाम की शिक्षा से दीक्षित कर दिया और योरुप की सीमाओं तक 'ला इलाह इल्लल्लाह, (ईश्वर के अतिरिक्त कोई पूजनीय नहीं) का स्वर पहुंचा कर ऐकेश्वरवाद का प्रचार किया। आप लोग हृदय से सच सच कहें, क्या यह कार्य उन लोगों का है जो बलात् मुसलमान किये जाते हैं जिनके हृदय अस्वीकारी (अर्थात् आदेश व आज्ञा का उल्लंघन करने वाले) और

वाणी मोमिन (अर्थात् आज्ञाकार) होती है दूसरे अर्थों में छली, प्रपञ्ची या कपटी होते हैं। नहीं, अपितु यह उन लोगों के कार्य हैं जिनके हृदय प्रेम और विश्वास के प्रकाश से आप्लावित हो जाते हैं और जिनके हृदयों में ईश्वर ही होता है।

फिर हम अपने पूर्व विषय की ओर आते हैं कि इस्लाम की शिक्षा क्या है? स्मरण रहे कि इस्लाम का सब से बड़ा उद्देश्य परमेश्वर के होने का प्रचार करना उसकी मर्यादा और अस्तित्व को इस भूमण्डल पर स्थापित रखना है, ईश्वरेतर पूजा का—मूर्ति पूजा, ईश्वरेतर नाना प्रकार के देवी देवताओं की पूजा इत्यादि का—मूलोच्छेदन करके विभिन्न सम्प्रदायों को एक झण्डे तले इकट्ठा करके एक जाति और एक धर्म बना देना है। इस्लाम से पूर्व समस्त धर्म और समस्त अवतार, सुधारक इस संसार के विभिन्न देशों में आए हैं उनकी शिक्षा, दीक्षा केवल अपनी जाति तक ही सीमित थी। यदि उन्हों ने कुछ सदाचार शिष्टाचार लोगों को सिखाए भी थे तो उन्होंने एक मात्र अपनी ही जाति को सदाचार व शिष्टाचार सिखाने के उद्देश्य से ऐसा कार्य किया था। हज़रत मसीह ने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया था कि मेरी शिक्षा इसराईल जाति तक ही सीमित है। यथा एक बार एक निरीह और निर्धन स्त्री ने जो इसराईल की वंशज नहीं थी, अति नम्रता से कुछ शिक्षा प्राप्त करने की हज़रत मसीह से प्रार्थना की, तो उन्हों ने इसे अस्वीकृत किया। पुनः स्त्री ने अपने को कुत्ती से उपमा देकर शिक्षा के लिए सविनय प्रार्थना की तो फिर उसे वही उत्तर मिला कि मैं केवल इसराईल की भेड़ों के लिए भेजा गया हूं। अन्त में वह निराश हो कर मौन हो गई। किन्तु हमारे पैगम्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद रसूले अरबी ने किसी भी स्थान पर ऐसा नहीं कहा कि मैं केवल अरब देश के लिए अथवा अरबी जाति के लिए ही भेजा गया हूं। अपितु क़ुर्आन करीम में यह आदेश है कि

قُلْ يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اِنِّيْ رَسُوْلُ اللّٰهِ اِلَيْكُمْ جَمِيْعًا

अर्थात् भू-मण्डल पर बसने वाली समस्त जातियों में यह घोषणा कर दो कि मैं समस्त संसार के लिए सुधारक बन कर आया हूं। किन्तु स्मरण रखिये हज़रत ईसा का उस अबला को शुष्क उत्तर दे देना हज़रत ईसा की क्षुद्रता को प्रकट नहीं करता और न ही इस में हज़रत ईसा का कोई दोष था अपितु वस्तु स्थिति यह थी कि सर्व-साधारण शिक्षा का अभी समय नहीं आया था। हज़रत ईसा को परमात्मा की ओर से यही आदेश था कि तुम विशेष तौर पर इसराईल जाति के लिए भेजे गए हो, अन्य जनता से तुम्हें कोई सम्बन्ध नहीं अतएवं हज़रत ईसा की शिष्टाचार की शिक्षा केवल यहूदियों के लिए सीमित थी।

वास्तव में तौरात में यह आदेश था कि दांत बदले दांत के, नेत्र बदले नेत्र के, नाक बदले नाक के अर्थात् यहूदियों में न्याय की शिक्षा की स्थापना की जाए तथा अन्याय और अत्याचार से रोका जाये। चूंकि वे लोग चार सौ वर्ष दासतां की शृंखलाओं में जकड़े रह चुके थे। उनमें अत्याचार और कमीनापन तथा क्षुद्रता की बातें अत्याधिक उत्पन्न हो चुकी थीं। अतः परमात्मा ने उनके ही स्वभाव के अनुसार जिसमें प्रतिशोध लेने की भावना, निर्दयता और अत्याचार की भावना घर कर चुकी थी उसको दूर करने के लिए अहिंसात्मक शिक्षा उपस्थित की जाये। (विनय और मृदुलता) अतः वह शिक्षा इञ्जील है जो केवल यहूदियों के लिए है समस्त संसार के लिए नहीं हैं, क्योंकि दूसरी जातियों के लिए हज़रत ईसा को कोई प्रयोजन नहीं था।

वास्तव में बात यह है कि जो शिक्षा हज़रत ईसा ने उपस्थित की उसमें केवल यही त्रुटि नहीं कि उसमें संसार की सर्वसाधारण

जनता के लिए और समस्त भूमण्डल के लिए सहानुभूति नहीं अपितु एक यह भी त्रुटि है कि जिस प्रकार तौरात अत्याचार और प्रतिशोध द्वारा प्रतिहिंसा की ज्वाला प्रदग्ध करने की शिक्षा में मर्यादा को तोड़ कर दूर चली गई इसी प्रकार इञ्जील क्षमा तथा अपराध को अन्धा-धुन्ध क्षमा करते जाने की सीमा का उल्लंघन कर गई। इस प्रकार इन दोनों धर्म ग्रन्थों ने मानवता के विभिन्न क्षेत्रों में घोर अवहेलना वृत्ति से काम लिया। यही नहीं मानवता रूपी वृक्ष की एक शाखा तो तौरात उपस्थित करती है और दूसरी डाली इञ्चील अपने कर में थामे खड़ी है। इस प्रकार ये दोनों ही पुस्तकों की शिक्षा मानव जीवन के दृष्टिकोण से अपनी अपनी मर्यादा से गिरी हुई है। मर्यादित शिक्षा ही मनुष्य के जीवन को उच्च बना सकती है। जिसका इन दोनों में सर्वथा अभाव है क्योंकि जिस प्रकार प्रत्येक (उचितानुचित) अवसर पर प्रतिशोध लेना और दण्ड देना उचित नहीं उसी प्रकार प्रत्येक (उचितानुचित) अवसर पर क्षमा करते जाना मानव समाज की दीक्षा की दृष्टिकोण से सर्वथा नीति विरुद्ध है और ऐसे कृत्य न्यायानुकूल नहीं कहे जाएंगे। इसी कारण क़ुर्आण शरीफ ने इन दोनों शिक्षाओं का खण्डन और निराकरण करते हुए कहा है :—

جَزَاءُ سَيِّئَةٍ سَيِّئَةٌ مِثْلُهَا فَمَنْ عَفَا وَ

اصْلَحَ فَاَجْرُهٗ عَلَى اللّٰهِ

अर्थात् दुराचार अथवा बुराई का प्रतिशोध उतना ही लेना चाहिए जितना दुराचार अथवा बुराई की गई हो। जिस प्रकार तौरात की शिक्षा है, परन्तु जो व्यक्ति क्षमा करे जैसी इञ्जील उपस्थित करती

है, तो ऐसी अवस्था में वह क्षमा उसी अवसर पर उचित और न्यायानुकूल होगी जब उससे शुभ परिणाम निकलता हो तथा जिसको क्षमा किया गया है वह क्षमा द्वारा अपना सुधार करे और उससे भविष्य के लिए शिक्षा ग्रहण करे। अन्यथा नियम और विधान यही है जो तौरात उपस्थित करती है अर्थात् यदि क्षमा से सुधार और शुभ परिणाम निकलने की आशा नहीं तो गास्पेल्स (Gospels) में वर्णित क्षमा उचित नहीं अपितु उस स्थिति में पण्टायूक (Pentateuch) 40 : 42 में वर्णित सिद्धान्त ही यथार्थ है।

इति शुभम्

मुद्रक—जसपाल प्रिंटिंग प्रेस, 351 कटड़ा कन्हैयां, अमृतसर

दूरभाष 41066

अहमदिया सम्प्रदाय की प्रचार सम्बन्धी संस्थायें

अहमदिया सम्प्रदाय का प्रत्येक व्यक्ति न्यूनायिक प्रचार के द्वारा अपने विचार एवं नियमों को प्रेम व्यवहार से दूसरों तक पहुंचाना अपना कर्त्तव्य समझता है। सम्प्रदाय के व्यक्तिगत प्रचार के प्रयत्नों के अतिरिक्त संस्था की ओर से प्रचारकों के द्वारा स्थायी रूप से प्रचार किया जा रहा है। इस समय निम्नलिखित विदेशों में केन्द्रीय प्रचारक अपने कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। यह सूचीपत्र भारत और पाकिस्तान के लगभग दो सौ प्रचारकों के अतिरिक्त है।

क्र० सं०	देश का नाम	संख्या	क्र० सं०	देश का नाम	संख्या
1.	इंग्लैण्ड	1	18.	आयोरी कोस्ट	1
2.	स्विटज़रलैण्ड	1	19.	लोगोयण्ड	1
3.	हालैण्ड	1	20.	दक्षिणी अफ्रीका	1
4.	स्पेन	1	21.	मारीशस	1
5.	डैनमार्क	1	22.	कीनिया कालोनी	3
6.	जर्मनी	2	23.	यूगण्डा	2
7.	संयुक्त राष्ट्र अमेरिका	5	24.	तंज़ानिया	2
8.	डच गिआना	1	25.	मिडिलीस्ट	3
9.	ब्रिटिश गिआना	1	26.	अदन	1
10.	ट्रेनीडाड	1	27.	श्री लंका	2
11.	फ़िजी-आई-लैण्ड	1	28.	ब्रह्मा	1
12.	आस्ट्रेलिया	1	29.	सिंगापुर	1
13.	गाना	3	30.	मलाया	1
14.	सीरालयून	5	31.	बोर्नियो	2
15.	नाइजेरिया	3	32.	इण्डोनेशिया	11
16.	लाइबेरिया	1	33.	फ़िलिस्तीन	1
17.	गेम्बिया	1			

उपर्युक्त संख्या के अतिरिक्त पचास के लगभग स्थानीय प्रचारक भी विभिन्न देशों में केन्द्रीय आदेशानुसार कार्य कर रहे हैं।